कुरुक्षेत्र

अप्रैल 1991

मूल्य तीन रुपये

महिलाएं और सामाजिक परिवर्तन

वर्ष–36, अंक 6, चैत्र-वैशाख शक-1913

[redacted]

[redacted]

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

एक प्रति : 3.00 रु.
वार्षिक चंदा : 30 रु.

[redacted]

महिलाएं और सामाजिक परिवर्तन 2
डा. बी. रिगीना पापा

आंखों में बसा गांव 5
नूर संतोखपुरी

ग्रामीण विकास कार्यक्रम और महिलाएं 6
डा. अजय जोशी

ग्रामीण महिला विकास हेतु शिक्षा की आवश्यकता 8
डा. गिरिजा प्रसाद दुबे

अभावों में जीती हैं महिला मजदूर 11
वंदना गुप्ता

ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बना रही है 'डवाकरा' योजना 13
आर. के. गोयल

आधुनिक तकनीक और गांव 15
बिमल बसु

पुस्तक समीक्षा 17
समीक्षक : देवेन्द्र मोहन

ग्रामीण पेयजल : समस्या नहीं, आवश्यकता है 18
डा. उषा अरोड़ा

सहकारी अंकेक्षण-सुधार की आवश्यकता 20
सुनील कुमार सिंह

राजस्थान में पर्यावरण प्रशासन : एक समीक्षा 23
अनिल सक्सेना

भारत में कृषि विकास 26
सत्यव्रत 'आर्य'

भारत में ईंधन लकड़ी का संकट 27
म. वि. कवडे

ग्रामीण संस्कृति और सम्प्रेषण माध्यम 31
डा. अनिल कुमार उपाध्याय

रजाई 32
मुनेश्वरी तिवारी

शहद की उपयोगिता 35
अभय कुमार जैन

डा. अम्बेडकर ने कहा था... 36
रमेश चन्द्र

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 384888

महिलाएं और सामाजिक परिवर्तन

डा. बी. रिगीना पापा

जीवन का मुख्य सिद्धांत बदलाव में ही निहित है। समाज में अलग-अलग स्तर के लोग रहते हैं जो किसी-न-किसी रूप में एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। यह स्थिति मूल रूप से परिवर्तनात्मक है और परिवर्तन की अनेक प्रक्रियाओं से इसके घटकों पर धीरे-धीरे किन्तु निरन्तर प्रभाव पड़ता है। समाज में परिवर्तन की यह कड़ी आपस में एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़ी हुई है कि एक के कठोर हो जाने से दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। एक स्तर पर लचीलेपन में कमी होने से पूरी प्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। चाहे वह पुरुष हो या महिला, परिवार हो अथवा राज्य, ग्रामीण हो अथवा शहरी, इससे कोई वर्ग वंचित नहीं रह सकता। लेकिन प्रत्येक घटक जहां एक ओर, एक-दूसरे से जुड़ा है वहीं दूसरी ओर वह शेष घटकों पर निर्भर भी रहता है।

भारतीय समाज बहुस्तरीय है। अलग-अलग क्षेत्रों, जैसे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों, अलग-अलग वर्गों, अलग-अलग धर्मों, जातियों और मान्यताओं के बीच अन्तर और उतार-चढ़ाव है। और साथ ही इस समाज में लिंग भेद भी विद्यमान है।

पुरुष प्रधान समाज में ऐसी प्रणालियां निहित होती हैं जिनमें पुरुष या तो बलपूर्वक, सीधे दबाव अथवा परम्परा, धर्म, कानून और भाषा, रीति-रिवाज, शिक्षा और श्रम-विभाजन की मार्फत यह तय करता है कि स्त्री को क्या करना है अथवा क्या नहीं करना है; जिनमें महिला सभी जगह पुरुष से नीचे ही रहती हैं। पुरुष प्रधानता की शक्ति गत तीन हजार वर्षों से व्यापक हो गई है। यहां तक कि मानव जाति के बारे में हमारे अधिकांश बुनियादी विचार, सृष्टि से हमारे संबंध अर्थात् पुरुष का स्वरूप और 'उसके' सृष्टि के साथ संबंध को पुरुष प्रधान भाषा में प्रकट किया जाता है। फ्रिटजोफ कापरा के कथनानुसार 'यह एक प्रणाली है', जो कि अभी तक इतिहास में चुनौती का सामना करने से वंचित रही है और इसके तथ्यों को सभी के द्वारा इस प्रकार स्वीकार किया जा रहा है कि अब वे प्रकृति के नियम-से प्रतीत होते हैं।

पुरुष प्रधान संस्कृति ने एक ऐसी दृढ़ शिक्षा बनाई है जिसमें सभी पुरुषों को व्यक्ति के रूप में 'पुरुषोचित' और सभी महिलाओं को 'स्त्रियोचित' माना जाता है। पुरुषों और स्त्रियों का यह ध्रुवित विभाजन महिलाओं को कमजोर, घटिया, निष्क्रिय, भंगुर, कोमल, संवहनी, आश्रित, अविश्वसनीय, सहजानुभूत के रूप में किया है जब कि पुरुष को उत्प्रेरक, नियंत्रक, शक्तिशाली, बेहतर, गर्ववान, स्वतंत्र, उद्यमी, प्रतियोगी, कर्मठ, सौन्दर्य बोधी माना गया है। पुरुष प्रधान संस्कृति ने समाज के अधिकांश अवसरों पर पुरुषों को अग्रणी भूमिका देकर इन तथ्यों को अर्थविहीन कर दिया है।

सभी जगह, समाज श्रम को लिंग के आधार पर विभाजित करता है और तदनुसार, पुरुषों और महिलाओं को आर्थिक कार्य आवंटित करता है। पहले की साधारण आर्थिक प्रणालियों में जहां-जहां परिवार की मेहनत ही उत्पादन का माध्यम होती थी, उत्पादन और खपत दोनों की मूल इकाई परिवार ही था। परिवार के लोग ही भूमि, श्रम और औजारों के रूप में संसाधनों पर नियंत्रण रखते थे और अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन करते थे तथा इसके अधिकांश भाग की खपत भी परिवार में ही हो जाती थी। ऐसे उपभोक्ता समाज में, महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए आर्थिक भूमिकाएं दूसरी घरेलू भूमिकाओं में समायोजित थीं।

आवश्यकता से अधिक उत्पादन, पूंजीवाद और औद्योगिकीकरण से परिवार की आर्थिक स्वायत्तता में कमी आई। श्रम की कीमत परिवार की बजाय बाजार में लगाई जाने लगी। तब पुरुष प्रधान समाज में श्रम के विभाजन में महिलाओं की भूमिका घरेलू कामों तक ही रह गई और पुरुषों को मानवीय उपलब्धि, रुचि और अभिलाषा की दूसरी भूमिकाएं सौंपी गईं। परिवार में महिलाओं द्वारा मुहैया कराए जाने वाले समाज और सेवाओं को उनकी मेहनत से मिलने वाले लाभ में सहायक के रूप में माना जाता है क्योंकि भुगतान न किए गए रख-रखाव के घरेलू काम को महिलाओं द्वारा घर में ही किया जाता है, इसलिए महिलाएं पूंजीगत औद्योगिक

उत्पादन की प्रमुख सहयोगी बन जाती हैं। लेकिन महिलाएं अपने घर और घर के बाहर दोनों जगह, मजदूरी अर्जन वाले और बिना मजदूरी वाले बहुत-से काम करती हैं।

1981 की जनगणना के अनुसार, 66.5 करोड़ की कुल जनसंख्या में से 48.3 प्रतिशत महिलाएं थीं और उनमें से 24.44 प्रतिशत आर्थिक स्वरूप के उत्पादक कार्यों में लगी हुई थीं। कुल महिला श्रमिकों की संख्या में से 79 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में कार्यरत थीं और 5 प्रतिशत घरेलू उद्योगों में लगी हुई थीं और केवल 26 प्रतिशत दूसरे गैर-कृषि और गैर-पारिवारिक कार्यों में लगी हुई थीं।

इस स्थिति के बावजूद, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आंकड़ा प्रणाली महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यों और उनके आर्थिक और सामाजिक योगदान को कवर नहीं करती। काम की परम्परागत परिभाषा उन कार्यों से दी जाती है जिनके लिए भुगतान किया गया हो, इसलिए महिलाओं द्वारा की जाने वाली यह मेहनत जो वह घर में अथवा बाहर करती है, काम की गणना से वंचित रह जाती है।

जिस काम की गणना नहीं होती उसकी कीमत भी नहीं आंकी जा सकती। संबंधों और प्रबंधों के शक्ति ढांचे की पुरुष प्रधान प्रणाली में, निजी क्षेत्र अथवा सरकारी क्षेत्र में महिलाओं के साथ भेदभाव और उन्हें पुरुषों द्वारा जन्म से ही सामाजिक तौर पर दबाया जाता रहा है। इस सामाजीकरण प्रक्रिया ने महिलाओं के अनुषंगी महत्व की पद्धति में असन्तुलन पैदा कर दिया है। एक महिला को सामाजिक सम्मान और दर्जा केवल उसके परिवार के एक सदस्य, पुत्री, पत्नी अथवा मां के रूप में दिया जाता है। हालांकि, व्यक्तिगत और/अथवा समाज के एक सदस्य के रूप में उससे यह आशा नहीं की जाती है कि वह अपने पारिवारिक स्तर से ऊपर उठकर स्वयं के अस्तित्व को उभारे।

भारतीय संस्कृति बनाने में महिलाओं और पुरुषों की अनुभूतियों को पुरुषोचित और स्त्रियोचितता के सांकेतिक निर्माण द्वारा स्वरूप दिया जाता है। संकेतों का दोहरा कार्य यह है कि "नामों और संकेतों के द्वारा न केवल हम बाहरी दुनिया की वास्तविकता पर टीका-टिप्पणी करते हैं बल्कि धीरे-धीरे वही नाम और संकेत हमारा निर्माण करते हैं"। संकेतों के अर्थ को भाषा, कला, साहित्य, लोक प्रसिद्ध माध्यमों और लोक कथाओं के माध्यम से बताया जाता है। पुरुष संकेतिक विचारों के सृजक और प्रेषक रहे हैं जबकि महिलाओं को रंग-बिरंगे संकेतों, रीतिरिवाजों, सिद्धांतों और धार्मिक मान्यताओं में बंधी एक उपभोगी के रूप में बन कर रहना होता है। एक महिला शक्ति, लक्ष्मी, काली, मोहिनी, रचयिता, विनाशक है, वह सृजन की शक्ति और विनाश की शक्ति दोनों ही है लेकिन वह अकेली नहीं है।

देवी के रूप में महिला की आराधना करना उसे शक्तिहीन बनाने और हाड-मांस का एक पुतला मानने का एक बहाना है। इस प्रकार, भारतीय नारी के धर्म संबंधी गुणों के ध्यानपूर्वक नियंत्रित ढांचे में अंतरंगित है और उसकी सेवाएं दूसरा ही चित्र अंकित करती है।

किसी भी सामाजिक पद्धति में पुरुष और महिलाएं एक-दूसरे के पूरक हैं, आर्थर कोइस्टवर के शब्दों में परिपक्व हैं। इस प्रकार दोनों अपने में अलग-अलग भी एक बड़े आकार के भाग हैं—ऐसे भाग जो अपना-अपना अस्तित्व रखते हैं। जब कोई भाग अधिक मात्रा में अस्तित्व में आ जाता है तो वह दूसरे पर अपनी शक्ति, अपने नियंत्रण से आधिपत्य जमा लेता है। तब पूरे समाज संतुलन के लिए खतरा पैदा हो जाता है। परिणाम यह होता है कि सुव्यवस्थित समाज की हर वस्तु में रुग्ण विकास झलकने लगता है। हटधर्मी पनपने लगती है और अस्तित्व को प्रतियोगिता, संघर्ष और विनाश की दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार दूसरा भाग अपने आप की स्वतंत्रता से वंचित रह जाता है, चयन की अपनी आजादी खो बैठता है। इन व्यवस्थित कार्यवाइयों और असंतुलित संबंधों का निष्कर्ष होगा टूटा-फूटा ढांचा और बिखरा हुआ समाज।

भारतीय समाज को आज एक तीव्र परिवर्तन की आवश्यकता है, यह परिवर्तन वृद्धि का नहीं अपितु इसके ढांचे और कार्य दोनों स्तरों पर एक मौलिक बदलाव होना चाहिए। पुरुष प्रधान ढांचों को बनाए रखने से, आयोजना का चाहे कोई भी स्वरूप क्यों न अपनाया जाए, यह केवल शोषणात्मक प्रणाली ही सिद्ध होगी जिसमें महिलाओं के प्रति अत्याचार बढ़ेंगे और वह दासता के और चंगुल में फंस जाएगी।

महिलाओं के लिए राष्ट्रीय भावी नीति 1988-2000 द्वारा बताए गए अनुसार महिलाओं की स्थिति की समग्र संकल्पना आजादी के 43 वर्ष बाद भी हतोत्साहक है। महिलाएं अब भी नाजुक, असहाय और शक्ति विहीन मानी जाती हैं। अशिक्षा, बेरोजगारी, उत्पादक साधनों की कमी, परिसम्पत्तियों पर नियंत्रण का अभाव, अपने महत्व की सुरक्षा के प्रति जानकारी की कमी आज भी विद्यमान है। ऐसा निम्नलिखित संकेतों से स्पष्ट हो जाएगा।

- एक तो लड़कियों की जन्मदर अधिक है और उनमें से 75 प्रतिशत अनपढ़ हैं। यदि 100 लड़कियां पहली कक्षा में दाखिला लेती हैं तो केवल 25 ही मिडिल स्कूल पास कर पाती हैं।

- उच्च शिक्षा में केवल 30.6 प्रशित महिलाएं प्रवेश लेती हैं जिनमें से केवल 6 प्रतिशत विज्ञान, औद्योगिकी और इंजीनियरी में आ पाती हैं।
- 100 में से 89 महिलाएं असंगठित क्षेत्रों में कामगार हैं जहां उन्हें न तो अच्छी मजदूरी मिलती है और न ही वे सुरक्षित ही हैं। इनमें से 82 कृषि और उससे जुड़े हुए काम धंधों में लगी हुई हैं।
- संगठित क्षेत्र में महिलाएं केवल 13.3 प्रतिशत ही हैं परन्तु अब काम मांगने वाली युवतियों की संख्या बढ़ रही है जो 51 लाख को पार कर गई है।
- यह सोचने की बात है कि जिस समाज में महिलाओं को उपभोक्ता माना जाता है, पुरुष द्वारा घर छोड़कर चले जाने, स्त्री को छोड़ देने आदि के कारण प्रत्येक तीसरे परिवार की मुखिया एक महिला है।

समाज के उच्च शक्ति वाले ढांचे में भी स्वार्थपूर्ण और घिनौनी स्थिति दिखाई पड़ती है। निम्नलिखित तथ्य इस कथन को सत्य सिद्ध करते हैं :

- प्रशासन और ऊंचे प्रबंधकीय व्यवसाय में 15,993 पुरुषों की तुलना में महिलाएं केवल 994 हैं जो कि 6.21 प्रतिशत बैठती हैं।
- भारतीय पुलिस सेवा में 2418 पुरुष अधिकारियों की तुलना में केवल 21 महिला अधिकारी हैं।
- भारतीय प्रशासनिक सेवा में केवल 7.5 प्रतिशत अर्थात 4209 पुरुषों की तुलना में 339 महिलाएं हैं।

इसके अतिरिक्त, 1989 के आम चुनावों में महिलाओं का पंजीकरण शक्ति के लिंगवार असमान वितरण की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। महिला संसद सदस्यों की संख्या 44 से कम होकर 29 रह गई जबकि सभी राजनीतिक दल महिला मतदाताओं पर ही निर्भर रहे।

इन बातों से यह सिद्ध होता है कि सभी वर्गों में महिलाओं के साथ भेदभाव अभी भी बना हुआ है। लेकिन गरीब महिलाओं की स्थिति अत्यधिक दयनीय है, उन्हें शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और निर्णय लेने जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक साधनों का समान लाभ नहीं मिल पाता। फिर भी हम महिलाओं की समस्याओं की जटिलता को समझे बिना महिलाओं के कार्यक्रमों के लिए अपनी नीतियां बना रहे हैं।

किसी भी प्रकार के सामाजिक परिवर्तन को एक पूर्व-अपेक्षिता के रूप में, उन ढांचों को, जो महिलाओं की शक्ति और सामंजस्य को कमजोर बनाते हैं, मूलतः बदलना चाहिए और महिलाओं के लिए विकास में पूर्ण और समान भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। शक्तिविहीनता और साधनहीनता की अनैतिक परतों के पीछे भौतिक असमनाताएं आज भी ज्यूं की त्यूं हैं। इसलिए मैथ्रीयी कृष्णराज के कथनानुसार, सरकार जो भी उदारता के उपाय करती है उनसे नए किस्म की रुकावटें पैदा हो जाएंगी बशर्ते कि ढांचे में ही परिवर्तन न किया जाए। इस प्रकार, परिवार नियोजन महिलाओं को कम करने में बदल गया है, लड़कियों की शिक्षा उसके विवाह का और महिला का रोजगार उसके परिवार को उपहार का स्थान ले चुका है।

जैसा कि पूर्व महिला तथा बाल विकास मंत्री श्रीमती मार्ग्रेट अल्वा ने टिप्पणी की थी कि राष्ट्रीय विकास के हमारे गत 40 वर्षों के प्रयासों के अनुभव से पता चलता है कि जब कि राष्ट्र के जनजीवन के सभी पहलुओं में काफी उन्नति हुई है, विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों को समान रूप से नहीं मिल सके हैं। ग्रामीण समुदाय, जो हमारी जनसंख्या का लगभग 80 प्रतिशत बैठता है, शहरों में रहने वाले मध्यम वर्गीय लोगों की तरह इन लाभों को प्राप्त नहीं कर सका है, कमज़ोर वर्ग आज भी सम्पन्न वर्ग की तुलना में अपने को सुरक्षित नहीं बना पा रहे हैं और महिलाएं पिछड़े नागरिकों में सब से बड़ा वर्ग बनी हुई हैं।

सामाजिक परिवर्तन निश्चित रूप से हो सकता है यदि महिलाएं हमारे समन्वित विकास कार्यों में योगदान के लिए स्वयं को कमजोर न समझें। महिलाओं को शक्ति प्रदान करने का अर्थ है उनकी ओजस्विता को सुदृढ़ बनाना। ऐसा उन्हें जानकारी, अधिकार और अनुभव प्रदान करके ही किया जा सकता है। उन्हें शक्ति देने का अभिप्राय उन्हें पुरुषों के ऊपर अधिकार दिलाना नहीं बल्कि असहायता और प्रभावहीनता को समाप्त करना है। उन्हें जीवन का मुकाबला करना, जीवन में चयन का अधिकार दिलाना, सामाजिक प्रक्रिया में हाथ बढ़ाने की क्षमता प्रदान करना है ताकि उनका जीवन सार्थक बन सके। अधिकार प्राप्त महिलाएं सामाजिक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देने की क्षमता रखती हैं। जब तक वे शक्तिशाली नहीं हो जाती तब तक समानता की कोई संवैधानिक गारंटी सामाजिक परिवर्तन में महिलाओं की भूमिका बढ़ाने में मदद नहीं कर सकती।

महिलाओं के मामले में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है आत्म परिवर्तन और पुरुषों व महिलाओं दोनों की सामाजिक भूमिका में परिवर्तन। ऐसा परिवर्तन लाने के लिए लिंग आधारित भूमिकाओं का पुनर्निर्माण करना होगा। भूमिका जैविक आधार पर नहीं बल्कि गुणवत्ता और आयु प

आधारित होनी चाहिए। महिलाएं परम्परागत अधिकार वाली संस्थाओं में और अधिक आनी चाहिएं और उन्हें आर्थिक, राजनैतिक, कानूनी, सामाजिक, चारित्रिक, सांस्कृतिक और जैविक अर्थात् सभी क्षेत्रों में नीतियां बनाने का काम सौंपा जाना चाहिए।

आज बाजार में, काम में, आधुनिक प्रौद्योगिकी में राजनीति है जो हमारी नीतियों और अवसरों पर नियंत्रण रखती है। महिलाएं परिवार की परीधि से बाहर निकलकर, अपनी व्यापक भागीदारी के लिए अवसरों को बढ़ाकर उन्नति के इन क्षेत्रों में कदम रख सकती हैं। उच्च जानकारी के लिए शिक्षा और अनुसंधान, प्रौद्योगिकीय, कार्यकुशलता, वाणिज्यिक और उद्यमीय उपक्रमों और उच्च राजनैतिक ढांचे में उन्हें बराबर का स्थान और अवसर मिलने चाहिए ताकि सामाजिक ढांचे को संतुलित बनाया जा सके।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि महिलाएं आक्रमणशील और प्रतियोगी बन जाएं और उससे ढांचे का और विनाश हो। बल्कि इसका अर्थ अपने आप को सुदृढ़ बनाना है ताकि वह बंधनों को तोड़ सके, असमानताओं को दूर कर सके और अपने आत्म-सम्मान की रक्षा कर सके। हजारों वर्षों से जो उत्तरदायित्व महिलाएं अपने कंधों पर उठाती रही हैं आज पुरुषों और महिलाओं दोनों को मिलकर उठाना होगा। आज वह समय आ गया है जब महिलाओं को उस स्थान पर पहुंचाना है और धीरे-धीरे पूरे ढांचे को बदलना है जहां पारिवारिक शांति हो, प्यार हो, समानता हो और सम्मान हो। महिलाओं को अधिकार दिलाना मानवता की मानवीयता है। इस दृष्टिकोण से पुरुषों और महिलाओं, दोनों को साथ मिलकर चलना है तभी दोनों का अर्थात् समग्र समाज का उत्थान हो सकता है और यही समय की मांग भी है।

अनुवाद : किरण बाला

आंखों में बसा गांव

नूर संतोखपुरी

मेरी आंखों में बसा है
अभी तक वह गांव,
जिसके पास बहती नदी में
नंगे बदन नहाया करता था,
जिसके किनारे-किनारे
मवेशी चराया करता था।

घर के सामने वाले जोहड़ में
कभी किसी को धक्का देकर
खूब खिलखिलाया करता था,
या तोड़कर अधपके आम
मजे में खाया करता था।

कभी कबड्डी खेलते हुए
मार के टंगड़ी किसी को गिराया करता था,
और देखकर बापू के हाथ में लट्ठ
धोती समेट भाग जाया करता था।

चाहता हूं, आंखों में बसी
मेरे गांव की हरियाली
इस सूने-वीरान शहर में
कहीं खो न जाए,
यहां की अनियंत्रित भीड़ में
आंखों में बसा गांव खो न जाए
कभी खो न जाये।

मोहल्ला संतोखपुरा
जालन्धर-144004 पंजाब

ग्रामीण विकास कार्यक्रम और महिलाएं

डा. अजय जोशी

देश की जनसंख्या का आधे से अधिक भाग महिलाओं का है। देश के मानव संसाधनों का पूर्ण विकास तभी संभव है जब महिलाओं को विकास कार्यक्रमों में पर्याप्त भागीदारी प्रदान की जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति काफी दयनीय है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों के विकास कार्यक्रमों में महिलाओं की भागीदारी की आवश्यकता काफी बढ़ जाती है। ग्रामीण विकास हेतु सरकार ने जो भी कार्यक्रम बनाए हैं उनमें ग्रामीण महिलाओं की पर्याप्त भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है ताकि महिलाओं का आर्थिक व सामाजिक जीवन स्तर ऊंचा उठ सके। विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन इन शीर्षकों के माध्यम से किया जा सकता है।

महिलाओं तथा बच्चों के विकास हेतु विशेष कार्यक्रम

वर्ष 1982-83 में ग्रामीण महिलाओं तथा बच्चों के विकास हेतु यह योजना समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत शुरू की गई। इस योजना के अंतर्गत महिलाओं को अपने बच्चों के लिए बेहतर पौष्टिक आहार, शिक्षा व कपड़े उपलब्ध कराने हेतु कार्य किए गए।

इस योजना के अन्तर्गत महिलाओं का समूह बनाया जाता है। प्रत्येक समूह में 15-20 महिलाएं होती हैं। प्रत्येक समूह को 15,000 रुपये इस लिए दिए जाते हैं कि वे इनसे उत्पादन हेतु कच्चा माल क्रय कर सकें। स्वयं द्वारा उत्पादित माल का विपणन कर सके तथा बच्चों की देखभाल के विभिन्न कार्य कर सकें। वर्तमान में यह योजना देश के 161 जिलों में चालू है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में 30,000 समूहों को इस योजना के अंतर्गत सहायता पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया। सातवीं योजना के प्रथम चार वर्षों (1985-86 से 1988-89) तक 22,400 समूह बनाए जा चुके थे। इन समूहों में 3 लाख 80 हजार महिलाएं सम्मिलित थीं। दिसम्बर 1989 तक इस योजना में 3028 समूह बनाए गए जिनमें 52745 महिलाएं सदस्य थीं।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी दूर करने के उद्देश्य से बनाए गए इस कार्यक्रम में प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र में उत्पादन हेतु वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है। यह सहायता अनुदान तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए जाने वाले सावधि ऋणों के रूप में होती है।

इस कार्यक्रम में भी महिलाओं को प्रतिनिधित्व देने के प्रयास किए गए। वर्ष 1989-90 में इस कार्यक्रम में महिलाओं को दिए गए स्थान का अध्ययन तालिका-1 द्वारा किया जा सकता है।

तालिका-1
समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में महिलाओं की सहभागिता

क्र. सं. विवरण	वास्तविक संख्या
1. कुल लक्ष्य	2908897
2. कुल उपलब्धि	1995589
3. महिलाओं का कवरेज	480106
4. महिलाओं का कवरेज प्रतिशत	24.06

इस तालिका से स्पष्ट है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत लाभ प्राप्त करने वालों में महिलाओं की संख्या 480106 थी जो कि कुल लाभ प्राप्त करने वालों का 24.06 प्रतिशत था।

जवाहर रोजगार योजना

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु निर्मित यह योजना फरवरी 1989 में देश के 120 पिछड़े हुए जिलों में गहन रोजगार अवसर जुटाने हेतु लागू की गई। इस योजना के अन्तर्गत 30 प्रतिशत स्थान महिलाओं हेतु आरक्षित किए गए हैं।

वर्ष 1989-90 के दौरान राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों को योजना चलाने हेतु दिए गए अनाज सहित कुल 2100 करोड़

रुपये केन्द्र द्वारा आवंटित किए गए। वर्ष 1989-90 के दौरान कुल 45 करोड़ 66 लाख 20 हजार कार्य दिवसों का सृजन कर रोजगार प्रदान किया गया। इस योजना में दिसम्बर 1989 तक प्रदत्त रोजगार में महिलाओं का भाग 23.15 प्रतिशत था। इस योजना के अंतर्गत संचालित सामाजिक वानिकी कार्यक्रम में पेड़ों के पट्टे महिलाओं के नाम पर ही दिए जाते हैं।

ट्राइसेम योजना

ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहित करने के लिए बनाई गई यह योजना समन्वित विकास कार्यक्रम की घटक है। इसके अंतर्गत 18-35 वर्ष की आयु वर्ग के ग्रामीण युवक/युवतियों को समुचित प्रशिक्षण प्रदान कर बैंकों तथा विभिन्न एजेंसियों के माध्यम से वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है। इस योजना में लाभ पाने वालों में कम से कम 33.3 प्रतिशत स्थान महिलाओं हेतु आरक्षित हैं।

वित्तीय वर्ष 1989-90 के दिसम्बर 1989 तक इस कार्यक्रम में महिलाओं की स्थिति को तालिका-2 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका-2

ट्राइसेम योजना में महिलाएं

क्र. सं. विवरण	वास्तविक संख्या
1. प्रशिक्षित युवाओं की संख्या	69136
2. प्रशिक्षित युवाओं में महिलाओं की संख्या	30911
3. महिलाओं का प्रतिशत	45

इस तालिका से स्पष्ट है कि ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण योजना के अंतर्गत महिलाओं के लिए निर्धारित 33.3 प्रतिशत भागीदारी की तुलना में 45 प्रतिशत भागीदारी प्राप्त हुई जो कि निर्धारित से 11.7 प्रतिशत अधिक है।

कापार्ट योजना

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू करने हेतु उन लोगों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है जिनके लिए कार्यक्रम बनाए गए हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु लोक कार्यक्रम तथा ग्राम टेक्नोलॉजी परिषद (कापार्ट) की स्थापना की गई। परिषद विकास योजनाओं को जनता की भागीदारी से क्रियान्वित करने के उद्देश्य से स्वयंसेवी तथा गैर-सरकारी एजेंसियों की सहायता लेता है। कापार्ट को जिन विभिन्न योजनाओं हेतु धन उपलब्ध कराया जाता है। उनमें महिला तथा बाल विकास कार्यक्रम भी सम्मिलित है। सातवीं योजना के प्रथम चार वर्षों में (1985-86 से 1988-89 तक) ग्रामीण क्षेत्रों में महिला तथा बाल विकास कार्यक्रम हेतु कुल 400 करोड़ रुपये की राशि कापार्ट को उपलब्ध कराई गई। वर्ष 1988-89 से 31 दिसम्बर 1989 तक इस योजना में 75 लाख रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई।

कापार्ट उन ग्रामीण तकनीकों तथा नए साधनों को प्रोत्साहित करती है जिनके माध्यम से घर के काम-काज व अन्य गतिविधियों में महिलाओं पर काम के बोझ को कम करने हेतु सहायता मिल सके।

केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम

इस कार्यक्रम में भी महिलाओं की भागीदारी निश्चित की गई है। कार्यक्रम के अंतर्गत महिलाओं के नहाने, शौचालय तथा कपड़े आदि धोने की सुविधाओं हेतु परिसर बनाने प्रस्तावित हैं। इन योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में महिलाओं के महत्व को समझा जाने लगा है। इन कार्यक्रमों के सफल संचालन हेतु परामर्श, जानकारी तथा देखभाल के जरिए महिलाओं को भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जा चुका है।

इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाओं में भी महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने के प्रयास चल रहे हैं। राज्यों से भी कहा गया है कि वे भूमिहीन परिवारों को दी जाने वाली जमीन के सभी पट्टों को स्त्री-पुरुषों के संयुक्त नाम से जारी करें ताकि महिलाओं को भी समुचित हक मिल सके।

इस प्रकार विभिन्न कार्यक्रमों तथा योजनाओं के अंतर्गत ग्रामीण महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान कर उनकी स्थिति में सुधार हेतु प्रयास चल रहे हैं। ग्रामीण विकास हेतु तैयार की गई कई योजनाओं में महिलाओं हेतु निर्धारित न्यूनतम स्थानों की पूर्ति भी नहीं की जा सकी है। इनमें महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

इन कार्यक्रमों में प्रायः महिलाओं के नाम से आवंटित सुविधाओं का लाभ उन्हें नहीं मिल पाता। ग्रामीण महिलाओं का शैक्षिक तथा सामाजिक स्तर इतना ऊंचा नहीं है कि वे विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की जानकारी प्राप्त कर सकें तथा उनमें भागीदारी ले सकें। इस हेतु शिक्षित किया जाना आवश्यक है। ग्रामीण विकास हेतु निर्धारित विभिन्न कार्यक्रमों तथा उनके अंतर्गत महिलाओं को प्राप्त हो सकने वाली

(शेष पृष्ठ 10 पर)

ग्रामीण महिला विकास हेतु शिक्षा की आवश्यकता

डा. गिरिजा प्रसाद दुबे

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सामाजिक और आर्थिक विकास की दिशा में किए गए प्रयासों के बावजूद हमारे देश के अधिकांश लोग अभी भी शिक्षा, जो मानव विकास की बुनियादी आवश्यकताओं में से एक है, से वंचित हैं। यह भी अत्यंत क्षोभ की बात है कि विश्व के निरक्षरों में से 50 प्रतिशत हमारे देश में हैं और एक बहुत बड़ी संख्या में बच्चे प्राथमिक शिक्षा के स्वीकार्य स्तर से वंचित रह जाते हैं। सरकार शिक्षा को सर्वोपरि प्राथमिकता देती है—एक मानव अधिकार के रूप में तथा अधिक मानवीय और प्रबुद्ध समाज की ओर अग्रसर होने के एक साधन के रूप में। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय समतावादी और लोकतंत्रात्मक, धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना का प्रमुख माध्यम शिक्षा को ही माना गया था। परन्तु 40 वर्षों के बाद भी स्थिति यह है कि आबादी का आधा भाग निरक्षरता से अभिशप्त है। 1981 की जनगणना के अनुसार साक्षरता का औसत 36.23 प्रतिशत था जिसमें पुरुषों का साक्षरता प्रतिशत 46.74 प्रतिशत तथा महिलाओं का 24.82 प्रतिशत था। शिक्षा के क्षेत्र में यही हमारी उपलब्धि रही है। यह मान्य तथ्य है कि किसी भी समाज के विकास की गाड़ी स्त्री-पुरुष रूपी दो पहियों पर ही चलती है। इसमें से किसी भी पक्ष की कमजोरी से गति में बाधा आती है।

शिक्षा और साक्षरता दो अलग शब्द हैं। किसी भी व्यक्ति के साक्षर होने का यह तात्पर्य नहीं है कि वह औपचारिक शिक्षा प्राप्त होगी। शिक्षा व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक विकास का साधन मानी जाती है। डा. जाकिर हुसैन के शब्दों में "शिक्षा वस्तुपरक मन का व्यक्ति परक मन में रूपान्तरण है। यह मूल्यों की व्यक्तिगत संगठित अनुभूति है जो संबंधित व्यक्ति की अनुभूति में उतर सकने योग्य मूल्यों के प्रतीक हैं।" महात्मा गांधी के अनुसार, "शिक्षा से तात्पर्य है बच्चे में विद्यमान श्रेष्ठ क्षमताओं तथा मनुष्य के तन-मन और आत्मा का पूर्ण विकास। साक्षरता न तो शिक्षा का आदि है और न अन्त"। अर्थात् शिक्षा तन-मन और संस्कृति के विकास के द्वारा व्यक्ति और समाज का कल्याण करती है, जिसके माध्यम से लोग अपने प्रयासों से न केवल आर्थिक जीवन को सुचारू रूप से चलाते हैं बल्कि अनेक सुविधाओं का उपभोग भी आनन्द के साथ करते हैं।

अनपढ़ों की संख्या अधिक होने पर आर्थिक नीतियां अच्छी प्रकार से नहीं लागू की जा सकती हैं। हमारे देश में ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है। उसमें भी ग्रामीण महिलाओं का औसत साक्षरता का प्रतिशत तीन ही है। यह स्थिति अत्यंत खेदजनक है। महिला शिक्षा का महत्व पुरुषों से कहीं अधिक माना जाता है। महात्मा गांधीजी यह कहा करते थे कि 'यदि आप एक लड़के को शिक्षित करते हैं तो आप केवल एक व्यक्ति को शिक्षित बनाते हैं, लेकिन यदि आप एक लड़की को शिक्षित बनाते हैं तो आप एक पूरे परिवार को शिक्षित बनाते हैं। एक पढ़ी-लिखी मां कभी भी यह सहन नहीं कर सकती कि उसके परिवार में कोई अनपढ़ रहे। शिक्षा के निम्न स्तर के कारण भी विकास की योजनाएं ग्राम से शहर तक अपेक्षित विकास करने में असफल रही हैं। इन बातों की पुष्टि अनेक समीक्षा समितियों के माध्यम से किए गए अध्ययनों से भी हो चुकी है।

नारी शिक्षा एवं विकास

आज नारी का क्षेत्र घर तक सीमित होकर बच्चों की देखभाल करना ही नहीं रह गया है। आज भारतीय नारी को समान अधिकार प्राप्त हो गया है। विकासशील देशों में उसके कार्य का महत्व और भी बढ़ गया है। इन देशों में गरीबी, भूख, उपेक्षा और अस्वस्थता आदि बुराइयों के विरुद्ध लड़ाई लड़ने में पुरुषों के साथ स्त्रियों के सहयोग की महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है। महात्मा गांधीजी मानते थे कि भारत गांवों में बसता है। आज भी 73 प्रतिशत आबादी गांवों में निवास करती है। साक्षरता के अभाव में ग्रामीण महिलाओं की सारी प्रगति कुण्ठित हो गई है। इस व्यापक निरक्षरता हेतु शैक्षणिक सुविधा के अभाव के साथ गांवों में फैली पुरातन एवं संकीर्ण विचारधारा भी उत्तरदायी है, जिसके अनुसार शिक्षा

महिलाओं के लिए नहीं है क्योंकि पढ़ाई-लिखाई से महिलाओं का संस्कार बिगड़ जाता है। परिणामस्वरूप अशिक्षित महिलाएं स्वयं का विकास न कर सकने के साथ ही आने वाली पीढ़ी के विकास की प्रक्रिया को अनजाने में दुष्प्रभावित करती हैं।

लड़कियां अनचाही सन्तान हैं?

स्त्री शिक्षा में कमी का कारण उनका अनचाही सन्तान होना भी है। भारत सहित एशिया महाद्वीप के प्रायः सभी देशों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है। स्त्री को लड़का पैदा होने पर मां समेत परिवार के सभी लोग अत्यंत प्रसन्न होते हैं। खुशियां मनाई जाती हैं परन्तु कन्या के जन्म होने पर मां सहित परिवार के सभी लोग अत्यंत दुखी होते हैं। कुछ लोग लक्ष्मी आने का बहाना बना कर संतोष प्रकट करते हैं। भ्रूण परीक्षण की सुविधा हो जाने से लड़कियों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया है। भ्रूण परीक्षण की यह सुविधा अभी बड़े-बड़े शहरों में ही प्राप्त है। लेकिन जिस तरह की भीड़ इन केन्द्रों पर देखी जा रही है इससे देर-सवेर गांव भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे। बम्बई शहर के एक सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि प्रसव के पूर्व लिंग परीक्षण के बाद कराए गए आठ हजार गर्भपातों में सात हजार नौ सौ निन्यानवे कन्या भ्रूण थे। केवल एक ईसाई महिला थी जिसने बालिका भ्रूण को नष्ट नहीं कराया क्योंकि वह कन्या ही चाहती थी। यदि यह स्थिति चलती रही और गांवों में भी इस पद्धति का विकास हो गया तो चारों ओर लड़के ही लड़के दिखाई देंगे। परिणामस्वरूप लड़कों के शादी-विवाह की समस्या भी बन सकती है।

मान्यताएं एवं प्रतिबंध

लड़कियों के संबंध में अनेक मान्यताएं एवं प्रतिबंध लगते आ रहे हैं। जो उन्हें लड़कों की तुलना में दूसरे स्तर का नागरिक बनने के लिए बाध्य करते हैं। सामान्यतया यह माना जाता है कि लड़की की नियति केवल पिता, भाई और पति की देख-रेख करने तथा मां और पत्नी बनने तक ही सीमित है। इसलिए उसके शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अध्ययन पर अनेक प्रतिबंध लगाए जाते हैं। यह माना जाता है कि उसके पढ़ने-लिखने के स्थान पर घरेलू काम-काज में दक्षता हासिल करना अधिक अच्छा है। ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में तो केवल कुछ ही ऐसे स्थान हैं जहां पास में ही स्कूल होते हैं जिनमें लड़कियों को जाने दिया जाता है। 1981 के अध्ययन में यह पाया गया है कि कक्षा 6 से 8 तक केवल 29 प्रतिशत लड़कियों का पंजीकरण हुआ। जबकि लड़कों का प्रतिशत 59.55 प्रतिशत था। इसके अतिरिक्त गरीब परिवारों की लड़कियों को बहुत कम उम्र में ही पारिवारिक कार्यों में अपने मां-बाप के साथ हाथ बंटाना पड़ता है। इसके कारण भी बहुत-सी लड़कियों को अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ती है। कम उम्र की लड़कियों के काम पर जाने का प्रतिशत बढ़ता ही जा रहा है। सन् 1971 में 5 से 14 साल की लड़कियों के काम पर जाने का प्रतिशत 4-6 था जो 1981 में बढ़कर 7-8 तक पहुंच गया। बीस साल से कम उम्र की लड़कियों में 20 प्रतिशत लड़कियों के कार्ययोजन-आय से ही घर का खर्च चलता है जबकि इसी उम्र के केवल 14 प्रतिशत लड़के अपने घरों में प्रमुख कामगार श्रेणी में आते हैं। इसका तात्पर्य है कि लड़कियां—परिवार पर बोझ न होकर लड़कों की अपेक्षा गृहस्थी का बोझ कम ही वय से वहन करने लगती हैं, जबकि लड़कियों के प्रति उदासीनता के बर्ताव के पीछे पारिवारिक बोझ का ही एक तर्क दिया जाता है। लड़कियों के प्रति यह आरोप तथ्यों पर आधारित नहीं लगते हैं। इसके अतिरिक्त महिलाओं के घरेलू श्रम की कीमत भी आंकी नहीं जाती है। शादी के पूर्व औसतन लड़कियां 40 हजार रुपये मूल्य का कार्य करती हैं। इस प्रकार का अध्ययन सार्वजनिक सहयोग एवं बाल विकास संस्थान द्वारा किया गया है। यह अध्ययन इस धारणा को निराधार साबित करते हैं कि परिवारों का सहारा लड़के ही होते हैं।

बालिकाओं को अधिक शिक्षित न कर पाने का एक कारण पारिवारिक आर्थिक स्थिति भी है। इसके अतिरिक्त दहेज भी एक प्रमुख कारण माना जाता है। सामान्य आर्थिक स्थिति वाले मां-बाप यह सोचते हैं कि लड़कियों को अधिक पढ़ाने पर उनका खर्च परिवार को उठाना पड़ेगा और वैसे ही अधिक पढ़ा-लिखा वर ढूंढ़ने पर अच्छा-खासा दहेज भी देना पड़ेगा। कम पढ़ाने पर लड़की की पढ़ाई पर कम खर्च करना पड़ेगा। ऐसे ही कम पढ़ा-लिखा वर ढूंढ़ने पर कम दहेज भी देना पड़ेगा। अतः दहेज अनेक प्रकार से स्त्रियों की दशा को गिराने के लिए जिम्मेवार है। इसीलिए इसे दहेज-दानव का विशेषण दिया जाता है।

शिक्षा से वंचित ग्रामीण महिलाओं की दशा भी कम चिन्ताजनक नहीं है। स्त्री और पुरुष की मजदूरी में भी कहीं-कहीं अन्तर देखने को मिलता है। भारत में 36 करोड़ 80 लाख महिलाएं हैं जो 27 करोड़ 80 लाख गांवों में रहती हैं। एक सर्वेक्षण से ये तथ्य प्रकाश में आया है कि गांवों में 30 से 35 प्रतिशत परिवारों के भरण-पोषण का दायित्व औरतों का ही पाया गया है। इसके पीछे अनेक कारण हैं जिसमें प्रमुख पति का बाहर नौकरी करना, ध्यान न देना अथवा उन्हें छोड़ देना है। कृषि कार्य में नारी को प्रातः से रात्रि तक कार्य करना पड़ता है। कृषि कार्य के साथ उन्हें पारिवारिक कार्यों को करने में किसी प्रकार की छूट नहीं होती है। आर्थिक उतार-चढ़ाव का सबसे

अधिक प्रभाव स्त्रियों पर ही पड़ता है क्योंकि घर-गृहस्थी की सबसे अधिक जिम्मेवारी उन्हीं पर होती है।

स्थिति का विश्लेषण एवं सुझाव

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति को ऊपर उठाने के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय संविधान लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव को स्वीकार नहीं करता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद (14-18) द्वारा प्रत्येक भारतीय नागरिक को समता का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद (14) यह व्यवस्था करता है कि भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद (15) धर्म, मूल-वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधारों पर विभेद का प्रतिषेध करता है। अनुच्छेद (16) सार्वजनिक नियोजन के मामलों में अवसर की समानता की गारंटी प्रदान करता है। स्त्रियों को सम्पत्ति संबंधी अधिकार अधिनियम, 1956 द्वारा पारिवारिक सम्पत्ति में पुत्री, पत्नी एवं माता के रूप में अधिकार प्रदान किया गया। हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 जो 1970 में संशोधित किया गया; के द्वारा एक विवाह की प्रथा को प्रतिष्ठित किया गया तथा तलाक की बराबर सुविधा भी प्रदान की गई। दहेज निरोधक कानून, 1961 में बना, जिसे 1984 एवं 1989 में संशोधन कर दहेज लेना और देना दोनों ही अपराध माना गया। साथ ही दहेज के कारण हुई हत्या को भारतीय दण्ड संहिता में सम्मिलित कर लिया गया है।

उपर्युक्त विश्लेषण से जो एक प्रमुख बात उभर कर सामने आती है वह यह है कि स्त्रियों की शिक्षा और उनके साथ बरते जा रहे भेद-भाव कानून बना देने मात्र से हल होने वाले नहीं हैं। उनकी बहुत सारी समस्याएं सामाजिक व्यवस्था, प्रथा एवं परम्पराओं से जुड़ी हुई हैं, जिनका निराकरण कानूनी दांव-पेंच से बहुत कुछ नहीं किया जा सकता है। सामाजिक व्यवस्था का बदलाव व्यक्तिगत और सामाजिक सोच एवं प्रवृत्तियों के परिवर्तन द्वारा होता है, जिसकी गति सामान्यतया बहुत तेज नहीं होती उसमें तेजी या तो क्रांति से अथवा किसी जादुई नेतृत्व के माध्यम से आती है। वैसे शिक्षा में जैसे-जैसे विकास होता जाएगा, धीरे-धीरे व्यक्तिगत और सामूहिक विचारों में बदलाव आएगा और स्त्रियों के प्रति किए गए व्यवहारों और भेद-भाव में भी कमी आएगी। इस प्रकार की बढ़ती हुई प्रवृत्ति शहरों में देखी जा सकती है। शहरों में स्त्री और पुरुष की स्थिति में काफी समरूपता देखने को मिलती है। ग्रामीण महिलाओं तथा लड़कियों की स्थिति तथा शहरी महिलाओं एवं लड़कियों की स्थिति में काफी अन्तर होता है। इसका मुख्य कारण शिक्षा को ही माना जाता है। शिक्षा प्राप्त महिला-पुरुष के सोच में बदलाव आ जाता है साथ ही शिक्षित महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता भी इसी से जुड़ा हुआ एक कारण माना जा सकता है। ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक परतंत्रता भी उनके शोषण का एक कारण बनती है। स्त्रियों के गृह कार्य जो उन्हें बहन, माता और स्त्री के रूप में किए गए कार्यों के अतिरिक्त करना पड़ता है; जो बहुत महत्वपूर्ण है, उन्हें पुरुष वर्ग द्वारा कम महत्व दिया जाना भी उनके प्रति किए गए अन्याय का एक हिस्सा है। जिसे पुरुषों को स्वीकार करना चाहिए। साथ ही अपने दृष्टिकोण में भी परिवर्तन करना चाहिए।

32, अध्यापक निवास
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

(पृष्ठ 7 का शेष)

सुविधाओं की जानकारी महिलाओं को प्रदान करना आवश्यक है।

विभिन्न कार्यक्रमों में लाभ की प्राप्ति हेतु निर्धारित औपचारिकताएं भी पूरी करना महिलाओं के लिए काफी कठिन होता है। अतः कई बार वे चाहते हुए भी औपचारिकताओं को पूरा न कर पाने के कारण लाभ प्राप्त नहीं कर पातीं। इसलिए यह आवश्यक है कि विभिन्न कार्यक्रमों में लाभ प्राप्ति हेतु औपचारिकताएं कम-से-कम हो ताकि उन्हें लाभ मिल सके।

विभिन्न कार्यक्रमों में महिलाओं की भागीदारी हेतु निर्धारित स्थान 30 से 33.33 प्रतिशत तक है जबकि उनकी संख्या इससे कहीं अधिक है। अतः ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों में महिलाओं की प्रभावी भागीदारी प्राप्त करने के उद्देश्य से इनका प्रतिशत बढ़ाया जाना आवश्यक है।

यदि इन उपायों के अनुरूप ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में महिलाओं की भागीदारी का निर्धारण किया जाता है तो ग्रामीण महिलाओं का जीवन स्तर ऊंचा उठेगा। वे अपने परिवार तथा देश के लिए अधिक उपयोगी साबित हो सकेंगी। आशा की जानी चाहिए कि इस ओर केन्द्रीय व राज्य सरकारें तथा ग्रामीण विकास में संलग्न विभिन्न अभिकरण समुचित ध्यान देंगे।

स्नातकोत्तर व्यवसाय प्रशासन विभाग
श्री जैन पी. जी. कॉलेज
गंगाशहर, बीकानेर, (राजस्थान)

अभावों में जीती हैं महिला मजदूर

वंदना गुप्ता

सड़क पर चलते हुए उस दिन अचानक ही पांव ठिठक गए। सामने एक अधबनी इमारत के पास राजस्थानी पहनावे में पांच-छः मजदूर औरतें काम करती जा रही थीं तथा आपस में हंसी-ठिठोली भी। पास ही चार-पांच बच्चे मिट्टी में खेल रहे थे। कभी-कभी वे औरतें उन बच्चों की ओर देख लेतीं, फिर अपने काम में लग जातीं। ऐसा लग रहा था, जैसे बच्चों को देखकर उनकी सारी थकान उतर जाती हो।

काम के बीच उन्हें प्रसन्न देख कर अपनी उत्सुकता रोकना मेरे लिए कठिन हो गया और मैं उनके पास पहुंच गई। थोड़ी-सी झिझक के बाद उन सबने बताया कि वे तीन महीने से यहां मजदूरी करने आ रही हैं।

बच्चों को घर पर क्यों नहीं छोड़ आतीं, यह पूछने पर उन्होंने कहा कि वे जहां काम करती हैं, वही उनका घर है। घर तो गांव में है, जहां से वे चार-पांच साल पहले अपने पति के साथ आ गई थीं। यहां जहां वे रहती हैं, वहां घर पर कोई नहीं है। उनका इशारा अपनी झुग्गी-झोपड़ी की तरफ था। इसीलिए वह बच्चों को साथ ही लेकर आती हैं, यहां कम से कम वह आंखों के सामने तो रहता है।

यह सुनकर सोचने पर मजबूर होना पड़ा कि गांव की यह अनपढ़ मजदूर औरतें बच्चे के प्रति अपनी जिम्मेदारी को शहरी महिलाओं से कितना अधिक समझती हैं। मजदूरी के बारे में पूछने पर उन्होंने बताया कि रोज उन्हें पंद्रह-सोलह रुपये मिल जाते हैं। उनके पति भी साथ ही काम करते हैं। कुल मिला कर गुजारे लायक पैसा मिल जाता है। इतना कह कर वे औरतें फिर अपने काम में लग गईं। सच ही तो है परिश्रम का फल मीठा होता है। ये मजदूर औरतें रूखी-सूखी रोटी में जो आनन्द व स्वाद पा रही हैं, वह स्वाद अधिकांश लोग पकवानों में भी नहीं पा सकते। इनके सुख तथा आत्म-संतोष की कल्पना भला कौन कर सकता है? गांव की ये मजदूर औरतें क्या उन नौकरी-पेशा महिलाओं की कार्य-क्षमता पर प्रश्न चिह्न नहीं खड़े करतीं, जो सुविधाजनक नौकरियों व अच्छी तनख्वाह में भी संतुष्ट नहीं होतीं। महिलाओं की समस्याओं के बारे में सोचते समय लोग केवल दफ्तरों में जाने वाली महिलाओं तक ही सीमित रहते हैं। इन नौकरी-पेशा महिलाओं को तो घर के सदस्यों का सहयोग भी मिल जाता है, लेकिन ये मजदूर महिलाएं तो इससे भी वंचित रहती हैं।

सुबह मुंह-अंधेरे उठकर ही यह अपना काम शुरू कर देती हैं। शाम को मजदूरी से लौटकर यह पेट की आग शांत करने की तैयारी करती हैं। अन्नपूर्णा तो हर स्त्री कहलाती है, लेकिन जो औरत खुद अर्थोपार्जन करके अपने परिवार का पालन-पोषण करे, सच्चे अर्थों में अन्नपूर्णा तो वही है। ये मजदूर महिलाएं अपना दिन हंसी-खुशी बिता कर अगले दिन का इंतजार करती हैं। जैसे ही सूरज की लालिमा आकाश में फैलने लगती है, इनकी दिनचर्या आरंभ हो जाती है। खाली बैठना इनके भाग्य में कम ही होता है। जिस दिन ये मजदूरी पर नहीं जातीं, उस दिन यह अपने पति तथा बच्चों की देखभाल, अपने बसेरे की सफाई-पुताई में व्यस्त रहती हैं।

इन मजदूर महिलाओं को केवल बनती हुई इमारतों में ही नहीं, बल्कि सड़क की खुदाई, मिट्टी की ढुलाई, मिट्टी तोड़ना, गलीचे की बुनाई, यहां तक कि बारातों में रोशनी के हंडे सिर पर उठाए देखा जा सकता है। थकान या निराशा का तो इनके चेहरे पर नामोनिशान ही नहीं पाया जाता।

लेकिन साथ ही एक सचाई यह भी है कि क्षेत्र कोई भी हो, महिला मजदूरों का हर जगह शोषण ही होता है। कम मजदूरी तो देना एक आम बात है। इसके अलावा बीमारी आदि में भी अवकाश नहीं दिया जाता है। ठेकेदार मजदूरी में अपना हिस्सा अलग वसूलते हैं।

जिन क्षेत्रों में महिला मजदूरों की अधिकता होती है उनमें एक है बीड़ी उद्योग। इस उद्योग की विशेषता यह है कि आधुनिकीकरण के बावजूद इसका सारा काम अभी तक हाथों से ही होता है। पत्तों में तम्बाकू भरना, तागा लपेटना व उन्हें बंडल में भरना व उस पर लेबिल लगाना, सारा कार्य हाथों द्वारा ही होता है। यही नहीं बीड़ी बनाने की प्रक्रिया तो तेंदू पत्ते को तोड़ने व बीनने से शुरू हो जाती है।

बीड़ी बनाने वाली महिलाओं की दैनिक आय अन्य क्षेत्रों की मजदूर महिलाओं से काफी कम है। बैंगलूर, जबलपुर, रामपुर तथा महासमुंद में आज भी बीड़ी मजदूरों को लगभग साढ़े दस

रुपये दिए जा रहे हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि बीड़ी के दामों में पिछले सालों में भारी वृद्धि हुई है, लेकिन उसके अनुपात में बीड़ी उद्योग में लगी महिला मजदूरों की मजदूरी नहीं बढ़ी।

बीड़ी के लिए प्रसिद्ध इन बड़ी जगहों के अलावा बीड़ी बनाने का कार्य प्रायः हर छोटे-बड़े शहर में होता है। सभी जगह महिला बाल-मजदूरों की स्थिति शोचनीय है। सरकार भी उनकी ओर समुचित ध्यान नहीं देती। बीड़ी-सिगार एक्ट, 1966 के अनुसार बीड़ी श्रमिकों को बोनस, सवेतन अवकाश, ग्रेच्युटि, न्यूनतम वेतन, छुट्टी की वैधानिक व्यवस्था, चिकित्सा सुविधा, भविष्य निधि तथा महिला श्रमिकों को प्रसूति अवकाश मिलना चाहिए। लेकिन बहुत ही कम कारखाने इन नियमों का पालन करते हैं। अधिकतर काम कराने वाले ठेकेदार की मनमानी के शिकार रहते हैं।

चाय की पत्तियां चुनने का कार्य भी महिला श्रमिकों के बिना नहीं हो सकता। लेकिन समस्याएं यहां भी वही हैं। यहां भी उन्हें उचित मजदूरी नहीं दी जाती।

यह तो घर की चहारदीवारी से निकल कर खेतों व कारखानों में काम करने वाली महिला श्रमिकों की दास्तान है। कुछ महिलाएं घरों में काम करती हैं। जैसे कपड़े की गुड़िया बनाना, लाख की चूड़ी बनाना, सुहाग बिंदी के पैकेट भरना, सिलाई-कढ़ाई तथा राखी आदि बनाने का कार्य। इन कार्यों में भी उन्हें बाजार दर से कम मजदूरी मिलती है। इसमें एक समस्या और भी है कि उन्हें नियमित काम नहीं मिलता। प्रायः ठेकेदार या कारखाने वाले के पास जा कर काम लेना पड़ता है। जिस दिन वे नहीं पहुंच पातीं, उस दिन का कार्य किसी और के हिस्से में चला जाता है और ऐसा अक्सर होता है।

महिला श्रमिकों की समस्याएं उतनी आसान नहीं हैं, जितनी देखने में लगती हैं। आजादी के बाद जो भी सरकार आई, उसने महिला श्रमिकों के कल्याण की योजनाएं तो कई बनाई, लेकिन उन पर क्रियान्वयन न हो पाया। आज भी महिला श्रमिक सरकार की ओर निहार रही है कि वह कब उस पर ध्यान देगी। समाज के निर्माण में उसका भी योगदान कोई कम तो नहीं है।

कुछ क्षेत्रों में महिला मजदूर अभी न के बराबर हैं, जैसे रेलवे कुली। यह काम बोझ उठाने व भाग-दौड़ से संबंधित है, इसलिए यह महिला श्रमिकों के अनुकूल नहीं है। लेकिन यह देख कर सभी को आश्चर्य होगा कि रिक्शा चलाने जैसे मेहनती काम में कुछ महिलाएं देखी जा सकती हैं। केवल दिल्ली में ही दो-तीन महिला रिक्शा चालक हैं। इसके अलावा यहां एक महिला टैक्सी ड्राईवर भी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि समाज के रचनात्मक निर्माण में महिला श्रमिकों का विशेष योगदान है। महिलाएं कुछ नहीं कर सकतीं या वह अबला है, यह धारणा अब झूठी पड़ती जा रही है।

30/34/6, मानसरोवर जयपुर, (राजस्थान)

रे मानव संरक्षण कर

कु. प्रभा शर्मा

'क' से कबूतर 'ख' से खरगोश 'ग' से गैया 'घ' से घर,
क्या खाएंगे, क्या पीएंगे, कैसे बनेंगे सुन्दर घर?
कटते जाएंगे वन सारे, नहीं गिरेगा जल भू पर,
संरक्षण हो वन वृक्षों का तभी बचेंगे ये वनचर।

हाथी, घोड़ा, भालू, बन्दर,
अप्पू, चेतक-से वे बलधर।
हनुमान से वीर बहादुर,
कहां रहेंगे सब वनचर?

वनराजा है शेर हमारा,
सिंहों का है देश हमारा।
है अशोक को भी जो प्यारा,
वही हमारा राष्ट्रचिह्न है, सिक्कों पर है घर-घर।

तोता, मैना और गौरय्या,
राष्ट्रीय पक्षी मोर है भैया।
हिरन चौकड़ी भूले सारी,
रक्षक ही भक्षक हैं भारी।
रेगिस्तान बढ़ा आता है क्या पायेंगे जीवन भर?

औषधियां मिटती जाती हैं,
ऐलोपैथी की आती हैं।
रोग दबाती दिखलाती हैं,
पैसों को फिर तड़पाती हैं।
सोचो क्या होगा निर्धन का, कैसे बचेगा गौरव फिर?

वन्य सम्पदा मूल्यवान है,
वन जीवन भी प्राणवान है।
रक्षण इसका आवश्यक है,
रे मानव संरक्षण कर।

**डी. ई. आई. (हिन्द) वि. वि.,
5/110, स्वेत नगर, दयाल बाग,
आगरा-5 (उ. प्र.)**

ग्रामीण महिलाओं को आत्म निर्भर बना रही है 'डवाकरा' योजना

आर. के. गोयल

हमारे समाज में महिलाओं को पुरुषों के समान दर्जा दिलाने के लिए यह जरूरी है कि उन्हें शिक्षित करने के साथ-साथ स्वावलम्बी भी बनाया जाए। आमतौर से यह देखा जाता है कि पुरुष प्रधान भारतीय समाज में परिवार का मुखिया समस्त परिवार के पालन-पोषण के लिए आजीविका के साधन जुटाता है और नारी का कार्य क्षेत्र घर की चार दीवारी के भीतर सिमट कर रह जाता है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि नारी को समाज में पुरुष के समान दर्जा नहीं मिल पाता।

नारी को गृह कार्य के अतिरिक्त यदि किसी अन्य व्यवसाय में लगाया जाए तो वह परिवार के मुखिया का बोझ बांटते हुए परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार ला सकती है। परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार आने से बच्चों का पालन-पोषण भी बेहतर ढंग से सम्भव हो सकता है। इससे महिलाओं के सम्मान में वृद्धि होगी और परिवार की स्थिति में सुधार आएगा।

इस बात को ध्यान में रखते हुए हरियाणा के महेन्द्रगढ़ जिले में महिलाओं व बच्चों के कल्याण के लिए वर्ष 1983-84 में 'डवाकरा' नामक योजना शुरू की गई थी। जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी द्वारा संचालित इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं व बच्चों के आर्थिक, सामाजिक तथा मानसिक स्तर को ऊंचा उठाना है। इस योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में 15-20 महिलाओं का एक समूह बनाया जाता है। ये महिलाएं आपस में मिलकर अपनी आय के साधनों में वृद्धि करने के लिए अपने ही गांव में अपनी रुचि का कोई व्यवसाय शुरू करती हैं। इसके लिए जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी की योजना के तहत इन महिलाओं को उनके चुने हुए व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण के उपरान्त इस महिला समूह को निजी व्यवसाय शुरू करने के लिए 15 हजार रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है ताकि वह अपना काम चालू कर सके। इन समूहों की महिलाएं सर्वसम्मति से अपना ग्रुप लीडर चुन लेती हैं जो सरकारी कर्मचारी व ग्रामीण महिलाओं के बीच तालमेल बनाए रखने का कार्य करती हैं। ग्रुप के कार्य की देखभाल का मुख्य भार भी उसी पर होता है। ग्राम सेविका हिसाब-किताब रखने में मदद करती है।

महेन्द्रगढ़ जिला में ग्रामीण क्षेत्रों में 'डवाकरा' योजना के तहत अब तक 270 महिला समूहों का गठन किया जा चुका है। इन महिला समूहों में से प्रशिक्षण के उपरान्त 104 समूहों ने अपने व्यवसाय का कार्य शुरू कर लिया है। प्रशिक्षण प्राप्त समूहों को अपना कार्य शुरू करने के लिए 15 हजार रुपये प्रति समूह के हिसाब से धनराशि दी गई है जो कि उनके संयुक्त खातों में जमा करवाई गई है।

इस योजना के तहत प्रत्येक विकास खण्ड में 30 महिला समूहों का गठन किया गया है। काम शुरू करने के लिए दी जाने वाली धनराशि में यूनिसेफ, केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार का बराबर-बराबर का हिस्सा होता है। इस राशि का प्रयोग महिला समूहों को प्रशिक्षण देने, व्यवसाय के लिए कच्चा माल तथा सहायक मशीनरी की खरीद आदि के लिए किया जाता है। इन महिला समूहों द्वारा कई प्रकार का सामान तैयार किया जाता है जैसे दरी बनाना, बिस्कुट बनाना, बान बनाना, नमकीन व बर्फी बनाना, चाक बनाना, पेन रिफल तैयार करना, बनियान व बुनाई आदि का काम करना प्रमुख है।

जिला महेन्द्रगढ़ में जिन महिला समूह ने अपना व्यवसाय शुरू किया है उनमें से सबसे अच्छा काम बेकरी का काम करने वाले महिला समूह का रहा है। इन समूहों द्वारा बनाए गए सामान की बिक्री के लिए जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी द्वारा समाज कल्याण विभाग से भी सम्पर्क किया गया है। महिला समूहों द्वारा तैयार माल जिले के आंगनबाड़ी केन्द्रों में किया जाता है तथा यह सप्लाई नांगल चौधरी विकास खण्ड, कनीना, खोल तथा जाटूसाना विकास खण्ड के आंगनबाड़ी केन्द्रों में की जा रही है। अब तक 23 लाख रुपये की सप्लाई की जा चुकी है। दूसरे नम्बर पर दरी बनाने वाली महिला समूहों का कार्य गिना जाता है। इस समूह द्वारा तैयार दरियां प्राइवेट एक्सपोर्टरों को बेच दी जाती हैं। अब तक 1.5 लाख की दरियां एक्सपोर्ट हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त 13 महिला समूह ऐसे हैं जो कताई के काम में लगे हैं इन समूहों को खादी, ग्रामोद्योगों के साथ जोड़ दिया गया है। भारतीय नौ सेना द्वारा 1.5 लाख रुपये की बनियान एवं तकिए के गिलाफ बेचे जा चुके हैं।

जो महिला समूह मुड्ढा बनाने, बान बनाने तथा पेन-रिफल तैयार करने के व्यवसाय में लगे हुए हैं उनका माल स्थानीय बाजारों में बिक जाता है। यदि इन समूहों को सरकारी संस्थाओं के आर्डर मिलने लग जाएं तो यह अपने उत्पादन को बढ़ा सकते हैं। विशेष तौर पर स्कूलों के लिए चाक, डस्टर, टाट-पट्टी आदि।

इन महिला समूहों की सुविधा के लिए जिला के प्रत्येक विकास खण्ड में एक-एक बहुउद्देश्यीय सामुदायिक केन्द्र बनाया गया है जिन्हें प्रशिक्षण देने व आय अर्जन के काम में लिया जा रहा है। काम करने वाली महिलाओं के लिए बालवाड़ी भी इन्हीं केन्द्रों में लगाई जाएगी। 'डवाकरा' से सम्बन्धित ग्राम सेविका की रिहायस भी यहीं होगी जो कि चल रहे केन्द्र की देखभाल भी कर सकेगी।

फिलहाल महेन्द्रगढ़ जिले में जब ग्रामीण महिलाओं के समूहों ने अपने व्यवसाय का काम शुरू किया है उनमें से बहुत-से समूहों का काम सराहनीय है, इससे महिलाओं की आत्म निर्भरता बढ़ी है और उन्हें सम्मान मिला है। इन महिला समूहों में गरीबी से नीचे रह रही महिलाओं को शामिल किया जाता है। अतः स्वभाविक है कि अपनी आय के साधनों में वृद्धि होने से उन महिलाओं के परिवार की आय में सुधार हुआ है जिसके फलस्वरूप इनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हुई है। सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं में यह आत्मविश्वास पैदा हुआ कि वे परिवार की आय को बढ़ाने व आत्म-निर्भर होने में सक्षम हैं। गांव की अन्य महिलाओं को भी इससे प्रेरणा मिलती है और ग्रामीण महिलाओं की जाग्रति के लिए इस योजना के अच्छे परिणाम सामने आए हैं। कई महिलाएं पढ़ना-लिखना भी सीख गई हैं।

महेन्द्रगढ़ जिले की महिलाएं कृषि प्रधान परिवारों से सम्बन्धित होने के कारण परिश्रमी हैं और खेतों में पुरूषों के साथ कंधे-से-कंधा मिला कर काम करती हैं। नारी शिक्षा का यहां अपेक्षाकृत अभाव है। रूढ़ीवादी विचारधारा व शंकालु स्वभाव के कारण यहां की नारी की गतिविधियां घर व खेत तक ही सीमित हैं। ऐसी सामाजिक परिस्थितियों में 'डवाकरा' योजना ने यहां की महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने का जो मार्ग दिखाया है उससे नारी जगत को नई चेतना मिली है। फिलहाल इन व्यवसायी महिलाओं के मार्ग में अनेक बाधाएं हैं जिनका निवारण होने पर इस योजना के बहुत ही अच्छे परिणाम निकल सकते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस योजना से गरीब परिवारों की महिलाओं में आत्म-निर्भरता बढ़ेगी और परिवार तथा बच्चों के पालन-पोषण में सुधार हो सकेगा। परिवार की आय में वृद्धि होने से गरीबी की रेखा से ऊपर उठने के अवसर मिलेंगे साथ ही महिलाओं की जाग्रति तथा उनमें आत्म-विश्वास की भावना को बल मिलेगा। आप भी आज से ही 'डवाकरा' का साबुन, सर्फ, शर्बत, चाक, स्वेटर, बनियान , फ्राक, दरी, गलीचे, बिस्कुट, नमकीन आदि दैनिक व्यवहार में लाने का प्रण लें। समस्त चीजें डी.आर.डी.ए. दफ्तर में उपलब्ध हैं। शीघ्र ही हर खण्ड मुख्यालय में मासिक 'अपना बाजार' भी लगा करेगा।

जिला लोक सम्पर्क अधिकारी
नारनौल, (हरियाणा)

लेखकों के लिए

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय वे कृपया इन बातों का ध्यान रखें:—

रचना संक्षिप्त एवं उसकी प्रस्तुति रोचक होनी चाहिए। इसमें उपलब्ध करायी गयी जानकारी अप्रकाशित और प्रमाणित होनी चाहिए।

रचना दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप की हुई हो जो सात-आठ पृष्ठों से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

रचना के साथ ब्लैक एंड व्हाइट फोटो भी आमंत्रित हैं।

आधुनिक तकनीक और गांव

विमान बसु

भारत कई विरोधाभासों से भरा देश है। एक ओर तो हमने उपग्रह के निर्माण, उसके अंतरिक्ष में प्रक्षेपण और परमाणु बिजलीघर चलाने की टेक्नोलॉजी विकसित कर ली है लेकिन दूसरी ओर हमारे अधिकांश गांवों में बिजली तक नहीं है। गांवों के लोगों को परिवहन के साधन के रूप में बैलगाड़ियों से काम चलाना पड़ता है। हमारे शहरों में कैट-स्कैन और अल्ट्रासोनोग्रैफी जैसी आधुनिकतम स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध हैं जबकि अनेक गांवों में बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं तक का अभाव है। लेकिन अब स्थिति में परिवर्तन हो रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान का फायदा धीरे-धीरे गांव के लोगों को मिलने लगा है।

अधिकतर गांवों में सबसे बड़ी समस्या पीने के पानी की है। हर साल हजारों लोग प्रदूषित जल से उत्पन्न होने वाली बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। देश के अनेक भागों में गांवों की महिलाओं को पानी लाने के लिए रोजाना मीलों पैदल चलना पड़ता है। लेकिन अब अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी से उन्हें फायदा हो रहा है। अंतरिक्ष से लिए गए चित्रों की मदद से भूगर्भशास्त्री जमीन के नीचे पानी का ठीक-ठीक पता लगा सकते हैं। अंतरिक्ष विभाग ने संबद्ध राज्यों के दूर-संवेदन उपग्रह केन्द्रों के सहयोग से, उपग्रहों द्वारा लिए गए चित्रों की मदद से समूचे देश का जल विज्ञान मानचित्र तैयार कर लिया है। देश के सभी 447 जिलों के मानचित्र राज्यों के लोक स्वास्थ्य इंजीनियरी विभागों, भूमिगत जल विभागों और केन्द्रीय भूमिगत जल बोर्ड जैसे संगठनों को उपयोग के लिए उपलब्ध करा दिए गए हैं। उपग्रह द्वारा भेजे गए आंकड़ों पर आधारित इन मानचित्रों से ग्रामीण लोगों को पीने का पानी उपलब्ध कराने के लिए भूमिगत जल वाले स्थान का पता लगाने में मदद मिलती है।

भूमिगत जल की खोज

कुछ साल लगातार मानसून की वर्षा न होने और भूमिगत जल के स्तर में कमी से देश के कई भागों में भयानक सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। चूंकि भूमिगत जल जमीन के नीचे होता है अतः सतह की विशेषताओं के अनुसार भूमिगत जल की स्थिति को समझना आवश्यक है। अंतरिक्ष टेलक्नोलॉजी के आगमन से पूर्व भी कई वर्षों से भूमिगत जल सर्वेक्षण में विमानों से लिए गए चित्रों का उपयोग होता रहा है। आजकल भूमिगत जल का पता लगाने के लिए उपग्रहों द्वारा भेजे गए दूर-संवेदन आंकड़ों का व्यापक इस्तेमाल किया जा रहा है। चित्रों को देखकर भूमिगत जल का पता लगाने की तकनीक का भी काफी इस्तेमाल होने लगा है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उपग्रह से प्राप्त चित्रों के विश्लेषण, विमान से लिए गए चित्रों और सर्वेक्षण की परम्परागत विधियों से भूमिगत जल की संभावना वाले क्षेत्रों का पता लगाने में मदद मिलती है। अब यह कार्य कई संगठनों द्वारा किया जाने लगा है। भारतीय दूर-संवेदन उपग्रह-आई.आर.एस.–I(ए) द्वारा भेजे गए आंकड़ों और मानचित्रों के इस्तेमाल से भूमिगत जल की खोज की संभावना 88 से 95 प्रतिशत तक बढ़ गई है जबकि परम्परागत विधियों से 44 से 55 प्रतिशत सफलता की संभावना रहती थी।

भूमिगत जल का सही-सही पता चल जाने के बाद भी पीने के पानी की समस्या पूरी तरह हल नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए गुजरात और राजस्थान में भूमिगत जल खारा होने के कारण पीने योग्य नहीं होता। अब खारे पानी को पीने योग्य बनाने के लिए ''रिवर्स आस्मोसिस'' नाम की नई टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल किया जा रहा है। गुजरात, राजस्थान और दक्षिण के समुद्र तटवर्ती इलाकों के समस्याग्रस्त गांवों में अब महिलाएं पीने का पानी लाने के लिए रोजाना दूर-दूर तक पैदल नहीं चलतीं। अब देश में रिवर्स आस्मोसिस टेक्नोलॉजी पर आधारित पानी का खारापन दूर करने वाले 30 संयंत्र काम कर रहे हैं। इनसे गांव के लोगों को पीने का साफ पानी घर पर ही उपलब्ध हो रहा है।

उच्च टेक्नोलॉजी से हमारी ग्रामीण अर्थव्यस्था को कई तरह से मदद मिल रही है। आई.आर.एस.–I(ए) द्वारा लिए गए खेतों में खड़ी फसलों के चित्रों से किसानों तथा जिले के अधिकारियों को समय रहते फसलों की बीमारियों और कीड़े-मकोड़ों से होने वाले संभावित नुकसान का पता चल जाता है और वे रोकथाम के लिए आवश्यक कदम उठा सकते हैं। उपग्रह से लिए गए चित्रों का उपयोग उचित समय पर बाढ़ की पूर्वसूचना देने के लिए भी किया जा रहा है।

प्राकृतिक आपदाओं की चेतावनी

अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी का उपयोग हमारे देश के समुद्र तटवर्ती गांवों के लोगों को तूफान की चेतावनी देने में भी किया जाने लगा है। इन इलाकों में समुद्री तूफान से भारी तबाही होती है। इनसेट उपग्रह पर आधारित प्राकृतिक आपदा पूर्वसूचना प्रणाली तूफान की आशंका होने पर अपने आप चालू हो जाती है और गांवों के लोगों को समय रहते खतरे वाले इलाकों को छोड़ने की चेतावनी देकर मदद करती है। इस अनोखी प्रणाली से हाल के कुछ वर्षों में भयंकर तूफानों से जानमाल के नुकसान को कम करने में मदद मिली है।

आधुनिक टेक्नोलॉजी ने टेलीविजन के माध्यम से हमारे गांवों में व्यापक परिवर्तन किए हैं। इनसेट के जरिए टेलीविजन की पहुंच देश के दूर-दराज के भागों तक है। उपग्रह टेक्नोलॉजी ने ग्रामीण क्षेत्रों में जन-शिक्षा के कारगर माध्यम के रूप में अपना प्रभाव सिद्ध कर दिया है। देश भर में गांवों में लगाए गए 8,000 टेलीविजन सैट गांवों के पढ़ना-लिखना न जानने वाले अधिकांश लोगों के लिए स्वास्थ्य, पशु-चिकित्सा, कृषि और परिवार कल्याण के बारे में क्षेत्रीय भाषाओं के कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

आधुनिक टेक्नोलॉजी की मदद से दूर-संचार सुविधाओं के जरिए गांवों से संपर्क बनाना और भी आसान हो गया है। भारत के गांवों में जहां देश की 75 प्रतिशत आबादी रहती है, खराब मौसम की वजह से विश्वसनीय दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध करना काफी कठिन है। विदेशों से मंगाए गए या विदेशी टेक्नोलॉजी की सहायता से स्वदेश में बने उपकरण हमारे गांवों की धूल और गर्मी सहन नहीं कर पाते हैं। दूसरी समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में टेलीफोन लाइनों की मांग कम होना है। व्यावसायिक दृष्टि से फायदेमंद टेलीफोन एक्सचेंज काफी बड़े और महंगे होते हैं।

इन समस्याओं से निपटने के लिए कुछ वर्ष पूर्व भारतीय टेक्नोलॉजी विशेषज्ञों ने पूरी तरह स्वदेशी, भरोसेमंद और छोटे ग्रामीण टेलीफोन एक्सचेंजों के निर्माण का कार्य हाथ में लिया है। ये एक्सचेंज भारत की जलवायु की विषमताओं को झेल सकते हैं और वातानुकूलन या जलवायु-नियंत्रण के बिना काम कर सकते हैं। आज देश में ही विकसित कई ग्रामीण एक्सचेंज अच्छा काम कर रहे हैं। हमारा अंतिम लक्ष्य लगभग गांव में सार्वजनिक टेलीफोन उपलब्ध कराने का है ताकि देश के किसी भी भाग में लोगों को टेलीफोन करने के लिए 5 किलोमीटर से ज्यादा न चलना पड़े।

पूर्वोत्तर राज्यों के पहाड़ी गांवों में कम लागत पर अच्छी दूर-संचार सेवा उपलब्ध कराने के लिए उपग्रह पर आधारित दूर-संचार प्रणाली स्थापित करने की योजना लागू की जा रही है। हमारे गांवों के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए बेहतर दूर-संचार सुविधाओं के जरिए वहां तक पहुंच का होना बेहद जरूरी है।

आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी से भी हमारे गांवों को अप्रत्यक्ष रूप से फायदा हो रहा है। गांवों में जानवरों से कई तरह के काम लिए जाते हैं। इसलिए वे भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग हैं। भारत में गाय-भैंसों की तादाद विश्व में सबसे अधिक है। लेकिन उनकी उत्पादकता काफी कम है। नस्ल सुधार के लिए अब तक जो कार्य हुआ है वह विदेशी जाति के पशुओं से संकर-नस्ल के पशु पैदा करने तक सीमित रहा है। इसके अलावा यह काफी धीमी प्रक्रिया है क्योंकि गाय या भैंस को बच्चा पैदा करने में 13 से 18 महीने तक का समय लग जाता है। बायो टेक्नोलॉजी की एक साथ कई बच्चे पैदा करने और भ्रूण स्थानांतरण जैसी विधियों से केवल एक गाय से साल भर में 25 बछड़े पैदा किए जा सकते हैं। यह विधि काफी सरल है और इसके जरिए कम समय में बेहतर नस्ल के अनेक बछड़े पैदा किए जा सकते हैं। इस विधि प्रयोगशाला में विकसित भ्रूणों को गायों में प्रतिरोपण कर दिया जाता है। सन् 1987 में भ्रूण प्रतिरोपण परियोजना शुरू किए जाने के बाद से इस विधि से 100 बछड़े पैदा किए जा चुके हैं। इस उपलब्धि से न केवल दूध का उत्पादन बढ़ाने में मदद मिलेगी बल्कि इससे हमारे गांवों में पशुओं की नस्ल में भी महत्वपूर्ण सुधार लाया जा सकेगा।

कम्प्यूटरों का उपयोग

इस समय हमारे देश में कई तरह के कार्यों में कम्प्यूटरों का इस्तेमाल हो रहा है। लेकिन आमतौर पर यह बड़े शहरों और नगरों तक ही सीमित है। बैंकों, जीवन बीमा, रेल और हवाई यात्रा के लिए आरक्षण और बिजली तथा पानी के बिल तैयार करने जैसी कई सार्वजनिक सेवाओं में कम्प्यूटरों के प्रयोग से इन सेवाओं के कामकाज में भारी परिवर्तन आया है। सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के उद्योगों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों में भू-नियंत्रण, प्रबंध तथा कार्यालय के काम का ब्यौरा ठीक ढंग से रखने के लिए कम्प्यूटरों का इस्तेमाल होने लगा है। इसका पहला कारण यह है कि कम्प्यूटरों को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए लगातार बिजली की सप्लाई और धूल तथा नमी रहित वातावरण का होना बहुत जरूरी है। दूसरे, हमारे गांवों में अभी कम्प्यूटरों की जानकारी रखने वाले लोग नहीं के बराबर हैं।

इन सब कमियों के बावजूद कम्प्यूटर हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को काफी बढ़ावा दे सकते हैं। संसाधनों के बेहतर

प्रबंध, भू-राजस्व संबंधी खातों के उचित रखरखाव, भूमि की किस्म के आधार पर कृषि में काम आने वाली सामग्री और फसलों के प्रबंध में उनकी मदद ली जा सकती है। मौसम संबंधी पूर्वानुमान लगाने में कम्प्यूटरों की उपयोगिता पहले ही सिद्ध हो चुकी है। वर्षा की सही भविष्यवाणी से फसलों को न केवल जल्दी बुआई के संभावित खतरे से बचाया जा सकता है बल्कि सही समय में बुआई से उत्पादन भी बढ़ाया जा सकता है। कम्प्यूटर पर एकत्रित सूचनाओं से गांवों के पशुपालकों को कृत्रिम गर्भाधान के लिए उपयुक्त किस्म के वीर्य के चुनाव में भी मदद मिल सकती है।

उपग्रह और बायो-टेक्नोलॉजी की तरह आज कम्प्यूटर आधुनिक युग का जिन्न बन गया है जो अलाउद्दीन के चिराग की कहानी के जिन्न की तरह सेवा के लिए हर वक्त तैयार रहता है। अगर इसका सोच-विचार कर इस्तेमाल किया जाए तो देश में ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने में यह काफी मददगार साबित हो सकता है।

(साभार योजना)

पुस्तक समीक्षा

श्रद्धांजलियां और प्रशस्तियां

श्रद्धा के फूल; लेखक: कन्हैया लाल 'मत्त'; प्रकाशक: काकली प्रकाशन, के. बी. 47, कवि नगर, गाजियाबाद; मूल्य: दस रुपये, पृष्ठ संख्या: 32 (सजिल्द)

हिन्दी में राष्ट्रीय कविताओं की एक धारा ऐसी रही है जो काव्य-जगत में सदा प्रतिष्ठित रही है। राष्ट्रीय चेतना को जिस तरह आम जीवन से अलग करके नहीं देखा जा सकता, उसी तरह राष्ट्रीय काव्य-धारा को समूचे काव्य-परिदृश्य से पृथक करना संभव नहीं है। इस राष्ट्रीय धारा के कवियों में श्री कन्हैया लाल 'मत्त' का नाम अपरिचित नहीं है। उनकी राष्ट्रीय कविताएं समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही हैं। उन्हीं कविताओं में से कुछ कविताओं का चयन करके उन्होंने 'श्रद्धा के फूल' नामक संकलन प्रकाशित कराया है।

'श्रद्धा के फूल' में कुल सोलह कविताएं हैं जो वास्तव में भारतीय जन-जीवन में प्रतिष्ठित युग-पुरुषों के प्रति या तो श्रद्धांजलियां है या फिर प्रशस्तियां। ये युग-पुरुष हैं—राम, कृष्ण, तुलसीदास, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मदन मोहन मालवीय, सुभाष चंद्र बोस, महात्मा गांधी, सरोजनी नायडू, सरदार पटेल,महाकवि निराला, जवाहरलाल नेहरू तथा लाल बहादुर शास्त्री। इन युग-पुरुषों में से प्रत्येक का कवि ने एक विशेष दृष्टिकोण से स्मरण किया है, जो शीर्षक के साथ दिए गए उप-शीर्षकों से स्पष्ट हो जाता है। युग-पुरुषों का चयन कवि ने अपनी निजी मान्यताओं के तहत किया है और भूमिका में उन्होंने इसका स्पष्टीकरण भी दिया है कि "भारतीय लोकजीवन में श्रद्धेय युग-पुरुषों की संख्या निश्चय ही इतनी छोटी नहीं है जितनी इस संग्रह से आभासित हो सकती है किन्तु बात चयन की नहीं अपितु कवि की अपनी रुचि और सीमा की है।" राष्ट्र का गौरव बढ़ाने वाले इन युग-पुरुषों के प्रति कवि की श्रद्धांजलियां निश्चित रूप से प्रशंसनीय हैं। उदाहरण के लिए महात्मा गांधी के प्रति निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं—

"तेरे नग्न निहत्थेपन पर, मुग्ध हुई वीरों की शान,
तेरे सत्साहस-समुद्र में डूब गए लाखों अभियान!

तेरी इस निर्मम हत्या में कृत्या का अनुताप छिपा,
जग के इस कुत्सित कु-कर्म में पितृ-घात का पाप छिपा।"

आशा है, पाठकों के लिए यह संग्रह उपयोगी होगा और युग-पुरुषों की स्मृतियों को अमर बनाएगा।

समीक्षक:देवेन्द्र मोहन
1261, गुलाबी बाग, दिल्ली

ग्रामीण पेयजल: समस्या नहीं, आवश्यकता है

डा. उषा अरोड़ा

जल ही जीवन है। जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। पृथ्वी पर जल का होना ही उसे अन्य ग्रहों की अपेक्षा विशेष महत्व प्रदान करता है। पृथ्वी प्रायः जलीय 'ग्रह' कही जाती है, क्योंकि भू-पृष्ठ का अधिकतर भाग महासागरों से अच्छादित है। वाष्पीकरण और संघनन की प्राकृतिक प्रक्रियाओं से ही हमें मीठा व ताजा जल प्राप्त होता है। मुख्य रूप से जल का उपयोग दो रूपों में किया जाता है। एक तो पेयजल के रूप में और दूसरा सिंचाई के रूप में। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ-साथ दोनों ही दृष्टि से जल की समस्या विकट होती जा रही है। एक ओर तो पीने का पानी चाहिए और दूसरी ओर खेतों को सींचने और लहलहाती फसलों के लिए जल आवश्यक है।

भारत में पेयजल की समस्या कई कारणों से बहुत भयंकर बन गई है। जनसंख्या का बहुत तेजी से बढ़ना, वर्षा का न होना, अकाल पड़ना इनमें से प्रमुख कारण हैं। पीने के लिए पानी ही नहीं, साफ पानी चाहिए। यह साफ पानी कहां से आए? गांव में अधिकतर कुओं से ही पानी निकाला जाता है। नदियां वर्षा का सारा का सारा जल बहाकर नहीं ले जाती हैं। इसका पर्याप्त अंश भूमि के भीतर रिस जाता है। जो जल भूमि के भीतर संचित हो जाता है उसे भौम जल कहते हैं। प्रारम्भिक काल से ही भौम जल को कुओं से निकाल कर पीने के उपयोग में लेते रहे हैं। पहले अधिकतर कुएं कच्चे होते थे लेकिन अब अधिकतर कुएं पक्के हो गए हैं। कुओं से पानी खींचने के लिए विविध यांत्रिक साधनों, जैसे पहिया, घिरनी और ढेंकली का उपयोग बहुत समय से किया जा रहा है। बहुत समय से कुएं पेयजल की पूर्ति करते आए हैं।

कूप और नलकूपों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली के बढ़ते प्रयोग से अधिक गहराई पर उपलब्ध अवमृदा जल के बड़े-बड़े भंडारों से जल प्राप्त करना संभव हो गया है। छेदन करने वाले यंत्र से भूमि में गहरा बेधन करके बिजली की सहायता से पानी निकाला जाता है। ये गहरे परिबोधित कुएं नलकूप कहलाते हैं। समतल मैदानों—बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा के गांवों में ये बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं।

छोटी-बड़ी, मौसमी और सदा पानी से भरी रहने वाली नदियों द्वारा भी गांवों में पानी की पूर्ति होती है। पर नदियों को बड़ी-बड़ी नहरों और बांधों में बदलने के कारण नदियों का स्वरूप दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है।

हमारी सरकार ने शुद्ध पेयजल की व्यवस्था को प्राथमिकता दी है। सरकार ने उन गांवों को सबसे अधिक प्रमुखता दी है जिन गांवों में 1.6 किलोमीटर की दूरी पर पानी का कोई स्रोत नहीं है। जिन गांवों में जमीन से भी पानी नहीं मिलता या जमीन के पानी में हानिकारक नशीले तत्व हैं, ऐसे गांवों के लिए सरकार ने अपनी योजनाओं में धनराशि अधिक रखी है। छठी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राज्यों के क्षेत्र में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अधीन 1407 करोड़ रुपये की राशि का प्रावधान किया गया। केन्द्र की ओर से ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के लिए 600 करोड़ रुपये की राशि रखी गई। छठी पंचवर्षीय योजना में एक लाख 90 हजार गांवों में जल आपूर्ति का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। बीस सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत सूत्र नम्बर आठ में भी पेयजल की समस्या रखी गई थी। इस सूत्र में यह कहा गया था कि समस्याग्रस्त गांवों में कम-से-कम एक सुरक्षित जल स्रोत मिले। 1980-81 में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के लिए 206 करोड़ रुपये, 1983-84 में 318 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया।

अप्रैल 1981 में संयुक्त राष्ट्र की ओर से जल आपूर्ति व सफाई का अन्तर्राष्ट्रीय दशक आरम्भ किया गया। भारत के शहरी क्षेत्र में केवल 77 प्रतिशत भागों में पेयजल की व्यवस्था थी और ग्रामीण जनसंख्या के लिए 34 प्रतिशत लोगों के लिए यह व्यवस्था थी। यह अनुमान लगाया गया है कि 1990 तक समस्त शहरी क्षेत्रों में जल आपूर्ति के लिए 3150 करोड़ रुपये और ग्रामीण क्षेत्रों में यह सुविधा पहुंचाने के लिए 6525 करोड़ रुपये खर्च किए जाने थे।

सरकार द्वारा बनाई गई योजनाओं और इस पर खर्च किए गए आंकड़ों से यह तो स्पष्ट है कि हमारी सरकार इस दिशा में बहुत गंभीरता से सोच रही है। पर जल आपूर्ति कार्यक्रम की

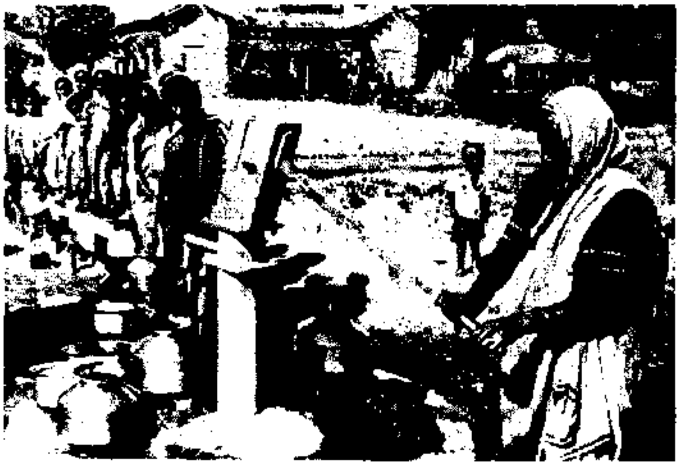

पानी की प्रत्येक बूंद बहुमूल्य है

सफलता के लिए जरूरी है कि स्वयंसेवी संस्थाएं या व्यक्तिगत क्षेत्र जल आपूर्ति सुविधाओं की स्थापना और उनकी देखभाल के लिए पूरा या आंशिक योगदान दे। स्वयंसेवी संस्थाएं, उद्योगपति या साधारण लोग ग्रामीण क्षेत्रों में हाथ से चलाए जाने वाले पम्प और नल आदि का प्रबंध करें। स्वयंसेवी संस्थाएं और जन-नेता लोगों को प्रोत्साहन दें। नई सुविधाएं जो मिली हैं उनकी देखभाल की जाए। इसके लिए लोगों को प्रशिक्षण दिया जाए। आंध्र प्रदेश में कुछ क्षेत्रों में ग्रामीण लोगों ने अपने ही खर्चे पर पेयजल की सुविधाएं जुटाईं। गुजरात में 500 या इससे अधिक जनसंख्या वाले गांवों में लोगों ने पांच-पांच, दस-दस रुपये प्रति व्यक्ति दिए हैं। उद्योगपतियों को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय कोष खोला है। इस कोष में दी जाने वाली राशि आयकर से मुक्त होती है। यह छूट आयकर कानून की धारा 35सी के अधीन दी जाती है और यह ग्रामीण क्षेत्रों में पम्प सैट लगवाने, कुएं खुदवाने, ट्यूबवेल लगवाने और पाइप लगवाने के लिए है। स्वयंसेवी संस्थाएं या तो ग्रामीण विकास राष्ट्रीय कोष में सीधे धन जमा करा सकती हैं या फिर ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की सुविधाओं की स्थापना करा सकती हैं। इस दृष्टि से जनता और सरकारी संस्थाओं एवं स्वयंसेवी संस्थाओं में परस्पर विचार-विमर्श होना बहुत आवश्यक है।

पेयजल की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महत्व दिया गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं यूनीसेफ की ओर से 1976 में मानवीय प्राकृतिक आवास पर सम्मेलन हुआ था। रूस में भी स्वास्थ्य रक्षा पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। आज भी कई देशों में स्वास्थ्य समस्या पर विचार करते समय पेयजल के बारे में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं। भारत में यह समस्या कई देशों से अधिक है। पर अब आवश्यकता इस बात की है कि इसे समस्या के रूप में नहीं बल्कि समाधान के रूप में देखना है। यदि इस आवश्यकता को समस्या के रूप में समझेंगे तो यह हमेशा समस्या ही बनी रहेगी। जल हमारी मूलभूत आवश्यकता है, इसके लिए सरकार, राज्य सरकार, सब का सहयोग तो अपेक्षित है ही इसके साथ सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हर व्यक्ति का इसमें योगदान हो। पानी के महत्व को समझें, पानी को व्यर्थ न बहाएं। पानी का मूल्यांकन सही हो। एक ओर तो नई खोजों द्वारा पानी की व्यवस्था हो और दूसरी ओर पानी की बूंद-बूंद बचाना भी हमारा कर्त्तव्य है। मात्र कूप लगाने से, नल लगाने से उनसे पानी नहीं गिरता। यदि सरकार कूप या नल लगाती है तो उससे जो लाभ उठा सकते हैं वह जरूर उठाएं पर इस दिशा में हम गांव के लोग भी उतने ही दोषी हैं जितना कि हम सरकार को दोष देते हैं। साफ पानी ही पीने का पानी है, पीने का पानी स्वच्छ हो....गड्ढे या तालाब में भरा न हो बल्कि निरन्तर बहने वाला पानी ही स्वच्छ पानी होता है और ऐसे ही पानी का उपयोग पीने के लिए करना उचित है। गंदे पानी का उपयोग करने से कई तरह की बीमारियां होती हैं, इसमें पीलिया बहुत प्रमुख है। गंदा पानी पीने से बीमारियों का प्रभाव सबसे अधिक बच्चों पर पड़ता है। बच्चों का शारीरिक विकास रुक जाता है। दूषित जल से बच्चों की मृत्यु बहुत अधिक संख्या में होती है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस दिशा में प्रगति नहीं हो रही है, जल प्राप्ति के अनेक साधन जुटाए जा रहे हैं। छोटे-छोटे गांवों में भी इस ओर ध्यान दिया जा रहा है, पर जो कुछ हो रहा है उतना ही पर्याप्त है यह भी कहना उचित नहीं होगा क्योंकि आज भी बूंद-बूंद को तरसते लोगों के लिए पेयजल एक समस्या है।

ए-5, एन.बी.सी. कालोनी
जयपुर (राजस्थान)

सहकारी अंकेक्षण-सुधार की आवश्यकता

सुनील कुमार सिंह

सहकारिता का मूल-मंत्र 'सब एक के लिए, एक सबके लिए' है अर्थात् सहकारिता की भावना से संगठित होकर समाज को आर्थिक रूप से सदृढ़ बनाना है। सहकारिता समाज के व्यक्तियों का एक ऐच्छिक संगठन होता है जो किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए संगठित होकर कार्य करता है तथा जिसका प्रबन्ध लोकतांत्रिक होता है। भारत सरकार द्वारा सहकारिता को कानूनी दर्जा 1904 में पारित सहकारी साख समितियां अधिनियम के द्वारा दिया गया है। इस अधिनियम में सहकारी समितियों के संगठन, प्रबन्ध, उद्देश्य, कार्यों व नियमों के अतिरिक्त समितियों के हिसाब-किताब की जांच के लिए अंकेक्षण की व्यवस्था का भी उल्लेख किया गया है।

सहकारी अंकेक्षण की आवश्यकता

सहकारी समितियों की सफलता व विफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि उसका कार्य ठीक प्रकार चल रहा है तथा उसका हिसाब-किताब नियम से किया जा रहा है। चूंकि सहकारी समितियों का निर्माण सदस्यों द्वारा सदस्यों के लिए किया जाता है तथा संचालन व प्रबन्धन भी सदस्यों द्वारा ही किया जाता है अतः यह आवश्यक है कि समिति का संचालन व प्रबन्धन ऐसे व्यक्तियों के हाथों में दिया जाए जो अनुभवी, ईमानदार व कर्तव्यनिष्ठ हों। इस संबंध में गांधीजी का विचार था कि "सहकारी आन्दोलन की सफलता का रहस्य यह है कि उसके सदस्य ईमानदार हों। वे सहकारी काम के लाभों को समझते हों और उनके सामने एक निश्चित ध्येय हो। इसलिए सिर्फ थोड़ा-सा रुपया इकट्ठा करके और हिस्सों या शेयरों पर मनमाना ब्याज लेकर रुपया कमाने की गरज से सहकारी मण्डल खड़ा करना अच्छी बात नहीं, लेकिन सहकारी पद्धति से काम करना सचमुच एक अच्छी चीज है।"

समिति के सदस्यों को यह विश्वास दिलाने के लिए कि समिति का संचालन एवं प्रबंध निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उचित प्रकार से किया जा रहा है, नियमित अंकेक्षण कराना अति आवश्यक हो जाता है।

सहकारी अंकेक्षण की वर्तमान व्यवस्था

भारत सरकार द्वारा 1904 में पारित सहकारी अधिनियम की धारा 21 में सहकारी अंकेक्षण का प्रावधान किया गया था जिसमें रजिस्ट्रार को स्वयं सहकारी समितियों के अंकेक्षण का कार्य सौंपा गया था। लेकिन 1912 में पुनः पास किए गए सहकारी अधिनियम में यह प्रावधान रखा गया कि रजिस्ट्रार स्वयं अथवा किसी अधिकृत व्यक्ति द्वारा सहकारी समितियों का अंकेक्षण कार्य सम्पादित करा सकता है।

इसके बाद भारत सरकार द्वारा सहकारिता के विकास के लिए कई कमेटियों व आयोगों का गठन किया गया जिसमें 1915 में गठित मैकलेगन कमेटी ने अंकेक्षण की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा था कि "अंकेक्षण का अर्थ केवल सहकारी समितियों को सन्तुलित करना ही नहीं बल्कि सदस्यों की भौतिक सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए आवश्यक रोक बनाए रखना भी है। इस कमेटी के विचार से अंकेक्षण का अपना दायरा कानून द्वारा चाही गयी आवश्यकताओं की सीमा से आगे तक बढ़ना चाहिए और उन सभी परिस्थितियों की जांच इसमें अन्तर्निहित होनी चाहिए जो किसी संस्था की साधारण स्थिति को निर्धारित करती हो।"

सहकारिता की महती आवश्यकता को दृष्टिगत करते हुए भारत सरकार के सुझाव पर विभिन्न राज्यों द्वारा अपने-अपने राज्यों के सहकारी समिति अधिनियम पारित किए गए, जिसमें सहकारी अंकेक्षण की व्यवस्था को अलग-अलग तरह से अपनाया गया है।

आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश के सहकारी अधिनियमों में यह प्रावधान है कि यदि अंकेक्षक को

यह विश्वास हो जाता है कि अंकेक्षण के समय समिति की कोई सम्पत्ति या पुस्तकों में कोई विकृति सम्भावित हो तो उसे ऐसी सम्पत्ति व लेखा पुस्तकों को मोहरबन्द करने का अधिकार है। उड़ीसा राज्य के सहकारी अधिनियम में अंकेक्षण को कतिपय सिविल कोर्ट के अधिकार दिए गए हैं। जैसे अंकेक्षण के समय किसी भी व्यक्ति को बुलाया जा सकता है और शपथ पर किसी भी व्यक्ति की परीक्षा कर सकता है। किसी भी पुस्तक को उपलब्ध कराने हेतु बाध्य कर सकता है। महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान के द्वारा पास किए गए सहकारी अधिनियमों की धाराओं में अंकेक्षण को सहकारियों की वार्षिक सामान्य निकाय की बैठक में भाग लेने का एवं अंकेक्षण संबंधी विषयों की सुनवाई का वैधानिक अधिकार प्राप्त है जबकि अन्य राज्यों के सहकारी अधिनियमों में इस प्रकार का कोई प्रावधान नहीं रखा गया है।

गुजरात सहकारी अधिनियम में यह प्रावधान है कि सहकारी समिति अंकेक्षण परिपालन कराने एवं समिति की हानि की पूर्ति कराने के प्रति अधिकृत है। पंजाब और राजस्थान के सहकारी समिति अधिनियमों में यह प्रावधान है कि अंकेक्षण के समय समिति की लेखा पुस्तकों के अपूर्ण होने की दशा में अंकेक्षण समिति के खर्च पर लेखा पुस्तकों को पूर्ण कराया जा सकता है जबकि अन्य राज्यों के सहकारी अधिनियमों में ऐसा प्रावधान नहीं है।

सहकारी अंकेक्षण की प्रक्रिया

चूंकि सभी राज्यों द्वारा अपने-अपने राज्यों में अलग-अलग समय पर सहकारी समिति अधिनियम पारित किए गए। अतः राज्यों द्वारा अपने-अपने अधिनियमों में अंकेक्षण ज्ञापन एवं अंकेक्षण प्रतिवेदन का प्रारूप भी अलग-अलग निरूपित किया गया। कुछ राज्यों में ज्ञापन प्रश्नोत्तरी के रूप में प्रस्तावित है और कपितय राज्यों में विभागीय प्रस्तावित निर्देशों के आधार पर अंकेक्षण प्रतिवेदन तैयार किया जाता है। राजस्थान, पंजाब, गुजरात व महाराष्ट्र आदि राज्यों में अंकेक्षण ज्ञापन का निर्धारित प्रोफार्मा प्रस्तावित है जबकि उत्तर प्रदेश राज्य में अंकेक्षक संगठन के निर्देशानुसार अंकेक्षण तैयार कराया जाता है।

सहकारी समितियों का अंकेक्षण करते समय अंकेक्षक भारतीय रिजर्व बैंक तथा विभागीय निर्देशानुसार समिति को अंकेक्षण वर्गीकरण में रखना होता है। इसकी चार श्रेणियां अ, ब, स, द हैं जो क्रमशः अति उत्तम, उत्तम, साधारण तथा निम्न स्तर इंगित करती हैं। अंकेक्षण वर्गीकरण वास्तव में अंकेक्षण प्रतिवेदन का सम्पूर्ण सारांश है। इसकी सहायता से समिति का प्रबंध, सेवा प्रदान क्षमता, लाभ एवं आर्थिक स्थिति का अवलोकन एक दृष्टि में किया जा सकता है। अंकेक्षण वर्गीकरण के निर्धारित मापदंड भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा मुख्यतः कृषि सेवा सहकारी साख समितियों एवं केन्द्रीय सहकारी बैंकों के अंकेक्षण हेतु प्रतिपादित किये गए हैं परन्तु इन मापदंडों को अभी तक सभी राज्यों द्वारा अपनाया नहीं गया। बल्कि अंकेक्षण कार्य पूर्णतः प्रचालित अंकेक्षण वर्गीकरण मापदण्डों से अंकेक्षण कार्य सम्पादित कराया जाता है।

सुधार की आवश्यकता

1904 व 1912 के सहकारी अधिनियमों द्वारा सहकारी संस्थाओं में सहकारी अंकेक्षण का प्रावधान किया गया था। व्यापक रूप से परिभाषित करते हुए निष्पक्ष अंकेक्षण का आधार न प्रदान किया जा सका। विभिन्न राज्यों द्वारा अपने-अपने राज्यों में अलग-अलग ढंग से सहकारी अंकेक्षण के प्रावधान किए गए हैं जो वर्तमान में अपनी कसौटी पर पर्याप्त सिद्ध नहीं हो रहे हैं।

सहकारी अधिनियम 1912 के द्वारा रजिस्ट्रार को यह अधिकार दिया गया था कि वह स्वयं अथवा अधिकृत व्यक्ति द्वारा सहकारियों का अंकेक्षण करा सकता है परन्तु अधिनियम में अंकेक्षक की नियुक्ति, न्यूनतम योग्यता, पारिश्रमिक, अधिकार, कर्तव्यों एवं दायित्वों का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया था जिसके अभाव में आज सम्पूर्ण सहकारी अंकेक्षण केवल औपचारिक कार्यवाही बनकर रह गया है।

वर्तमान में सहकारी संस्थाओं की संख्या, सदस्यों की संख्या तथा कार्य सेवा क्षेत्र के साथ बढ़ता हुआ सहकारी व्यवसाय नये-नये क्षेत्रों में द्रुत गति से प्रवेश कर रहा है। एक तरफ सहकारिता का तीव्र विस्तार हो रहा है वहीं दूसरी ओर अंकेक्षण कार्य में शिथिलता इसके भविष्य पर प्रश्न चिह्न लगा देता है। यह देखा गया है कि सरकारी अंकेक्षकों का सहकारी संस्थाओं के प्रति लगाव एवं सहकारी भावना के अभाव ने अंकेक्षण कार्य को मात्र औपचारिक बना दिया है, फलस्वरूप सहकारी संस्थाओं में दिन-प्रति-दिन आर्थिक उपयोग, गबन, भ्रष्टाचार एवं घोटाला तथा हानि की सम्भावनाएं बढ़ती जा रही हैं जिसके कारण जनता का विश्वास सहकारी संस्थाओं के प्रति कम होना स्वाभाविक है।

सहकारी संस्थाओं में विभिन्न प्रकार की अनियमितताओं में अंकुश लगा कर जनता में विश्वास जाग्रत करने के लिए सहकारी अंकेक्षण प्रणाली में पर्याप्त सुधार लाए गए ताकि सहकारी अंकेक्षण को श्रेष्ठतम बनाया जा सके। सहकारी

सुधार की आवश्यकता को देखते हुए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा सकता है:

सहकारी अंकेक्षण विभाग को पूर्ण स्वायत्तता

सहकारी विभाग में समितियों का अंकेक्षण अपने विभागीय श्रृंखला में निम्न स्तर का अधिकारी होता है जो कि अपने उच्च अधिकारियों को ही अंकेक्षण रिपोर्ट देता है। सामान्यतया अपने उच्च अधिकारियों को अनावश्यक दबाव आदि के कारण वह सहकारी अंकेक्षण निष्पक्ष नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में संस्था की सही स्थिति पता नहीं चल पाती है।

सहकारी अंकेक्षण विभाग को पूर्ण स्वायत्तता होने से अंकेक्षक समितियों की अंकेक्षण रिपोर्ट बिना किसी दबाव के निष्पक्ष तैयार कर सकेंगे तथा अपने ही विभाग के उच्च अंकेक्षण अधिकारी को रिपोर्ट सौंपेंगे। स्वतंत्र विभाग की स्थापना होने से अंकेक्षण पर अनावश्यक दबाव व शोषण न होने से उनका मनोबल ऊंचा रहेगा और वह अधिक कुशलतापूर्वक कार्य कर सकेंगे।

अंकेक्षकों की न्यूनतम योग्यता का निर्धारण

सहकारी अधिनियम में अंकेक्षण का अधिकार रजिस्ट्रार अथवा उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति को दिया गया है परन्तु अंकेक्षकों की नियुक्ति के संबंध में सब कुछ रजिस्ट्रार पर छोड़ दिया गया है। फलस्वरूप अंकेक्षकों की नियुक्ति में तमाम खामियां होने के कारण सहकारी आदेशों का स्तर निम्न हो गया। सरकारी विभाग में अंकेक्षण शाखा के लिए अंकेक्षकों की नियुक्ति, कर्मचारी पदोन्नति प्रत्यक्ष की जाती है। रजिस्ट्रार इसी शाखा से अंकेक्षण हेतु अंकेक्षक नियुक्त करता है।

अंकेक्षण कार्य को श्रेष्ठ बनाने के लिए अंकेक्षकों की न्यूनतम योग्यता का निर्धारण किया जाना आवश्यक है। पदोन्नति के द्वारा अंकेक्षण शाखा के लिए नियुक्त किए जाने वाले कर्मचारियों के लिए न्यूनतम योग्यता के साथ लेखाकर्म और अंकेक्षण के प्रारम्भिक ज्ञान तथा आधुनिक लेखा विधियों से भी परिचित होना चाहिए जिससे वे अपने कार्य का सम्पादन अच्छी तरह से कर सकेंगे।

अंकेक्षकों को नियमित सहकारी प्रशिक्षण

सहकारी विभाग में नियुक्त अंकेक्षक जो कि पदोन्नति अथवा प्रत्यक्ष चयनित होते है, को लेखाकर्म तथा अंकेक्षण का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं होता है। विभाग द्वारा उन्हें बिना गहन प्रशिक्षण दिए ही कार्य सौंप दिए जाते हैं। फलस्वरूप अंकेक्षण कार्य पर भेजने से पूर्व उन्हें गहन प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षण के द्वारा अंकेक्षकों को लेखा शास्त्र तथा अंकेक्षण विधियों में होने वाले नवीन परिवर्तनों की जानकारी प्रदान की जाए ताकि अंकेक्षक श्रेष्ठ अंकेक्षण कर सकें।

वृहत सहकारी संस्थाओं के लिए आन्तरिक अंकेक्षण अनिवार्य

सभी सहकारी संस्थाओं को वृहत, मध्यम और लघु तीन भागों में वर्गीकृत किया जाना चाहिए। वृहत संस्थाओं जैसे सहकारी चीनी उद्योग, सहकारी वस्त्र उद्योग, सहकारी दुग्ध उद्योग, सहकारी संस्थान आदि में आन्तरिक अंकेक्षण प्रणाली को अनिवार्य किया जाना चाहिए। इन संस्थाओं में नियुक्त अंकेक्षक की न्यूनतम योग्यता चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट (सी. ए.) होना अनिवार्य होना चाहिए।

अंकेक्षक की सहकारी संस्थाओं के प्रति जिम्मेदारी

वर्तमान में यह देखा गया है कि कुछ अंकेक्षकों की नियुक्ति रजिस्ट्रार सहकारी समितियां द्वारा की जाती है। अत: यह सरकारी कर्मचारी होते हैं इन अंकेक्षकों का सहकारी समितियों के प्रति कोई लगाव नहीं होता है। अंकेक्षक अपनी अंकेक्षण रिपोर्ट अपने उच्च अधिकारी को सौंपकर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाता है।

चूंकि सहकारी संस्था सदस्यों द्वारा संचालित सदस्यों के लिए होती है अत: सदस्यों को यह अधिकार होता है कि वह संस्था के कार्य व्यवहार एवं उसकी स्थिति की सही जानकारी प्राप्त करें। अत: अधिनियम में इस तरह का प्रावधान होना चाहिए कि अंकेक्षक संबंधित संस्था के प्रति जवाबदेह होगा। साथ ही सदस्यों के मध्य उसे अपनी अंकेक्षण रिपोर्ट रखते हुए सभी सदस्यों को संतुष्ट करने का प्रयास भी करना होगा।

अंकेक्षकों में सहकारी भावना का विकास

यह पाया गया है कि सहकारी संस्थाओं के अंकेक्षण कार्य करने वाले अंकेक्षकों में सहकारिता की भावना का अभाव रहता है अर्थात् इनमें संस्थाओं के प्रति कोई लगाव नहीं रहता है।

सहकारी अंकेक्षण शाखा में नियुक्त कर्मचारी सरकारी कर्मचारी होते हैं जिनको मासिक वेतन मिलता है। अत: अंकेक्षक सहकारी संस्थाओं में एक साधारण कर्मचारी की भांति ही मासिक वेतन के आधार पर कार्य करते हैं जिसके कारण इनमें सहकारी भावना का अभाव होना स्वाभाविक है।

कर्मचारियों में सहकारी भावना के अभाव में सहकारिता आन्दोलन में अवरोध पैदा कर सकती है। अत: कर्मचारियों में

(शेष पृष्ठ 25 पर)

राजस्थान में पर्यावरण प्रशासन : एक समीक्षा

अनिल सक्सेना

नवम्बर 1980 में भारत सरकार की संरचना में पर्यावरण एवं वन के स्वतंत्र मंत्रालय की स्थापना के समय केन्द्र सरकार द्वारा समस्त राज्य सरकारों से यह आग्रह भी किया गया कि वे अपने स्तर पर पर्यावरण विभाग की स्थापना करें। राजस्थान सरकार, जो 'प्रशासकीय नवोन्मेष' के कार्य में सदैव ही अग्रणी रही है, ने इस निर्देश के अनुरूप राज्य की प्रशासकीय संरचना में पर्यावरण विभाग का गठन 1983 में ही कर दिया था।

किसी भी प्रशासनिक संरचना का निर्धारण उसके लिए निर्धारित कर्तव्यों से निर्दिष्ट होता है। राज्य स्तरीय पर्यावरण विभाग की संरचना को इस विभाग द्वारा प्रायोजित कार्यों के इस दर्शन ने भी निश्चित किया है कि पर्यावरण एक बहुआयामी विषय है जिसका नियंत्रण और संचालन केवल एक विभाग के द्वारा नहीं किया जा सकता। विशेषज्ञों की मान्यता है कि जल, वायु, ध्वनि, मृदा इत्यादि प्रमुख पर्यावरणीय घटकों के अलावा पर्यावरण का विषय उद्योगों, सिंचाई, जनस्वास्थ्य अभियांत्रिकी, स्वास्थ्य, यातायात एवं परिवहन इत्यादि अन्यान्य सरकारी संस्थानों से अनन्य रूप से जुड़ा हुआ है। इनमें से अनेक प्रशासनिक संस्थाएं पर्यावरण के संरक्षण और संवर्द्धन की दिशा में प्रयत्नशील हैं तो दूसरी ओर कुछ संस्थाएं प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए सम्बद्ध हैं। इसीलिए पर्यावरण का यह बहु-आयामी विषय किसी एक विभाग द्वारा प्रशासित कर पाना संभव नहीं है। यही कारण है कि राजस्थान सरकार के राज्य स्तरीय पर्यावरण विभाग की संरचना और कार्यों का स्वरूप उसके उक्त दर्शन से प्रभावित, संचालित और अनुप्राणित होता हुआ दिखायी देता है। राज्य का पर्यावरण विभाग सरकारी स्तर पर एक ऐसी संस्था है जो पर्यावरण के संरक्षण, संवर्द्धन, प्रदूषण नियोजन से सम्बद्ध समस्त प्रशासनिक संस्थाओं में समन्वय और तालमेल बिठाने का कार्य करता है और राज्य की कार्यपालिका को तद्-विषयक परामर्श उपलब्ध कराता है।

राज्य स्तरीय पर्यावरण विभाग की संरचना इसी दार्शनिक पृष्ठभूमि से अभिप्रेरित है। राज्य में सर्वोच्च स्तर पर पर्यावरण एवं वन मंत्री द्वारा इसका राजनीतिक नेतृत्व किया जाता है जिसके अधीन वन एवं पर्यावरण से संबंधित एक शासन सचिव न केवल मंत्री को राजनीतिक परामर्श उपलब्ध कराता है अपितु राज्य में पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन के कार्यक्रमों के निष्पादन की प्रक्रिया का प्रशासनिक नेतृत्व भी करता है। राजनीतिज्ञ के रूप में मंत्री और प्रशासक के रूप में शासन सचिव पर्यावरण से संबंधित राजकीय नीतियों के प्रमुख शिल्पी होते हैं। शासन सचिव के अधीन पर्यावरण विभाग में विशेषाधिकारी एवं पदेन अप्रशासन सचिव एक ऐसा वरिष्ठ प्राधिकारी है जो व्यवहार में विभाग की गतिविधियों का संचालन करता है यद्यपि समस्त क्रियाकलापों पर अन्तिम निर्णय लेने का विधिक प्राधिकार सचिव में ही सन्निहित है।

राजस्थान की पर्यावरण संरचना का एक रोचक पक्ष यह है कि इसमें पर्यावरण विभाग और पर्यावरण निदेशालय दोनों की संरचनाओं का पृथक अस्तित्व न होकर अभी तक उनका समामेलन-सा हो गया है। दोनों संरचनाओं को राज्य सरकार ने 1983 में स्वीकृति दी थी और कदाचित राज्य सरकार का मन्तव्य यही रहा होगा कि विभाग नीतियों का निरूपण और निदेशालय उनका निष्पादन करेगा किन्तु विगत सात वर्ष की अल्प अवधि में यह दोनों ही संरचनाएं पृथक स्वरूप ग्रहण नहीं कर सकी हैं और व्यवहार में पर्यावरण विभाग तथा निदेशालय के लिए सृजित पद एक साथ ही सचिवालय स्थित विभागीय छत के नीचे कार्यशील हैं। प्रसंगवश यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि निदेशालय की संरचना के लिए राज्य सरकार द्वारा निदेशक का जो पद स्वीकृत किया गया था, उस पद पर अद्यतन कोई नियुक्ति नहीं की जा सकी है। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकार का मानस पर्यावरण विभाग को मात्र सलाहकारी निकाय बनाने तक ही सीमित है और वह उसे अभी तक कोई कार्यकारी शक्तियां प्रदान करने के पक्ष में नहीं है। यद्यपि यह संभावना निरन्तर विद्यमान है कि राज्य सरकार जब चाहे निदेशालय की निष्पादकीय इकाई को पृथक अस्तित्व प्रदान कर सकती है।

विभाग में अनेक प्रावैधिक अधिकारी एवं प्रावैधिक सहायक कार्यरत हैं जिनके अधीन कतिपय अधिनस्थ कर्मचारी भी कार्य करते हैं। विगत सात वर्ष में राजस्थान का यह पर्यावरण विभाग

इन पदों पर स्थाई नियुक्ति की अपेक्षा अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति पर लेकर काम चला रहा है। इस कारण विभाग में सेवा की संरचना, सेवा नियमावली एवं पदोन्नति इत्यादि के अवसर स्पष्ट नहीं हो सके हैं। पर्यावरण कार्यक्रमों को गति प्रदान करने के उद्देश्य से राज्य स्तर पर राजस्थान राज्य पर्यावरण आयोजन समन्वय मण्डल एवं इसके अन्तर्गत गठित स्थायी समिति के अन्तर्गत जिला स्तर पर जिला पर्यावरण समिति तथा राज्य स्तर पर ही एक पर्यावरण सुरक्षा परिषद व नमभूमि समिति का गठन किया गया है।

विभाग की गतिविधियां

राज्य के पर्यावरण विभाग द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेक कार्यों का सम्पादन किया जाता है किन्तु मोटे तौर पर यह विभाग तीन प्रकार के कार्यों के निरूपण व निष्पादन का कार्य अपने सहयोगी विभागों की मदद से करता है: (1) प्रकृति संरक्षण का कार्य, (2) जन-चेतना जाग्रत करना एवं (3) प्रदूषण नियंत्रण का कार्य।

प्रकृति संरक्षण का कार्य

प्रकृति संरक्षण कार्यों के अंतर्गत राज्य में वन्य जीवों की रक्षा, वनों की रक्षा तथा ऐतिहासिक, धार्मिक एवं पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों की देखभाल तथा उनके जीर्णोद्धार के कार्य किए जाते हैं। वन्य जीवों की रक्षार्थ राज्य सरकार द्वारा एक वन्य जीव सलाहकार बोर्ड का गठन किया गया है जिसका अध्यक्ष राज्य का वन मंत्री होता है। इस बोर्ड द्वारा वन्य जीवों की रक्षा का परामर्श राज्य सरकार को दिया जाता है। राज्य में पांच जन्तुआलाय हैं जो कि जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर और कोटा में स्थित हैं। इन जन्तुआलयों के विकास एवं रख-रखाव हेतु सरकार द्वारा प्रति वर्ष आर्थिक मदद की जाती है। राज्य में वन्य जीवों की हत्या करना अपराध घोषित किया गया है तथा वन्य जीवों की सुरक्षार्थ सात उड़नदस्ते अनवरत सक्रिय हैं।

'वर्ल्ड सेंचुरी' के नाम से विख्यात घाना पक्षी विहार राज्य के भरतपुर जिले में है। इसके अतिरिक्त दो राष्ट्रीय उद्यान सिरस्का (अलवर) तथा रणथम्भौर (सवाई माधोपुर) में स्थित हैं जिन्हें बाघ परियोजना के अंतर्गत 'बाघ रक्षित' क्षेत्र घोषित किया हुआ है। राज्य में चार अभ्यारण्य भी हैं जो कि माउन्ट आबू, कुम्भलगढ़, सीतामाता व हर्रा में स्थित हैं। इन सभी उद्यानों व अभ्यारण्यों के अलावा विभाग द्वारा नवीन वन्य क्षेत्रों की खोज एवं सुरक्षा का कार्य भी किया जाता है। राज्य में धार्मिक, ऐतिहासिक व पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों की देखभाल का कार्य भी विभाग द्वारा किया जाता है। इस कार्य को गति प्रदान करने की दृष्टि से राज्य सरकार द्वारा 1987 में एक नम भूमि विकास समिति की स्थापना की गई। यह समिति प्रमुखता के आधार पर ऐसे स्थानों का चयन करती है जहां के विकास की तत्काल आवश्यकता होती है तथा उसके विकास की योजनाएं तैयार करती हैं। इस समिति द्वारा वर्ष 1988 में पिछौला झील (उदयपुर), सांभर झील (जयपुर) और जलमहल झील (जयपुर) के विकास की योजनाएं बनाकर भारत सरकार को प्रेषित की गई थी जिन्हें भारत सरकार द्वारा 1989 में स्वीकृति प्रदान की गई है।

पर्यावरण चेतना का प्रसार

पर्यावरण चेतना का विकास करना पर्यावरण विभाग का दूसरा प्रमुख कार्य है। पर्यावरण विभाग इन कार्यों के सम्पादन हेतु तीन तरीकों का प्रयोग करता है। प्रथम सेमीनारों और कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है, द्वितीय विभिन्न प्रतियोगिताओं के माध्यम से पर्यावरण चेतना जागृत की जाती है और तृतीय प्रकार का प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा पर्यावरण के बारे में जानकारी देने का है।

अपने प्रथम कार्य की सम्पूर्ति में विभाग द्वारा गत वर्ष 1989-90 में चार संगोष्ठियों का आयोजन लक्ष्य निर्धारित किया गया था। जिनमें से दो संगोष्ठियों का आयोजन उदयपुर विश्वविद्यालय के वनस्पति शास्त्र विभाग तथा राजस्थान विश्वविद्यालय के लोक प्रशासन विभाग के माध्यम से कराया गया। इसी तरह दो अन्य संगोष्ठियां निदेशक पोषाहार व इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट तथा रोटरी क्लब जयपुर के तत्वावधान में आयोजित की गईं। यह सभी संगोष्ठियां राष्ट्रीय स्तर की थीं। इनके अतिरिक्त उदयपुर व अजमेर में पर्यावरण चेतना के प्रसार के निमित्त दो कार्यशालाओं का आयोजन भी किया गया। इसी प्रकार पूर्व प्रचलित सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम और वानिकी प्रशिक्षण कार्यक्रम के साथ-साथ राज्य के ग्रामीण अंचलों में पर्यावरण चेतना के प्रसार हेतु कठपुतली प्रशिक्षण का एक नया कार्यक्रम भी विभाग द्वारा आरम्भ किया गया है, जिसके अंतर्गत 25 शिक्षकों को कठपुतली प्रदर्शन की इस विधा में प्रशिक्षित कर तत्संबंधी एक किट उपलब्ध कराई गई है। जिसकी सहायता से वे रोचक और ग्राह्य तरीके से गांव में पर्यावरण के प्रति चेतना का प्रसार कर रहे हैं।

प्रदूषण नियंत्रण

राज्य के पर्यावरण विभाग का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य प्रदूषण नियंत्रण से सम्बन्धित है। इस भूमिका के अन्तर्गत यह विभाग राज्य में लगने वाले नए उद्योगों के स्थल चयन के सन्दर्भ में अनापत्ति प्रमाण पत्र देता है। इसके अतिरिक्त राज्य

के परिवहन विभाग जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग इत्यादि की सहायता से यह विभाग प्रदूषण नियंत्रण हेतु विभिन्न अभियानों का संचालन करता है और वन विभाग के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण को गति प्रदान करता है। स्थल चयन से सम्बन्धित अनापत्ति प्रमाण पत्र देने में विभाग यह देखता है कि वह स्थल जहां उद्योग लगाया जा रहा है, आबादी क्षेत्र अथवा वन क्षेत्र के नजदीक तो नहीं है एवं इस उद्योग के निष्पादित जल और वायु से प्रकृति के किसी भी घटक यथा वन, वन्यजीव और मानव पर प्रत्यक्षत: किसी प्रकार का दुष्प्रभाव तो नहीं पड़ेगा। इन सब आधारों की पुष्टि हो जाने के उपरान्त ही विभाग द्वारा उद्योगों को अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी किया जाता है। विभाग द्वारा प्रदूषण नियंत्रण हेतु यातायात एवं परिवहन विभाग तथा प्रदूषण नियंत्रण मण्डल के सहयोग से यातायात सप्ताह का आयोजन किया जाता है जिसमें प्रदूषण फैलाने वाले वाहनों की मुफ्त जांच एवं मोनिटरिंग की व्यवस्था की जाती है। इसी प्रकार 19 नवम्बर से 19 दिसम्बर तक पर्यावरण माह का आयोजन किया जाता है जिसमें पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न कार्यक्रम यथा वृक्षारोपण, जल शोधन इत्यादि सम्बन्धित विभागों की मदद से चलाए जाते हैं।

समीक्षा

राजस्थान सरकार के पर्यावरण विभाग के कार्यकरण का समग्र मूल्यांकन करने पर यह उद्घाटित होता है कि इस विभाग की भूमिका के सम्बन्ध में जो परिकल्पना की गई है वह राज्य में पर्यावरण की रक्षा के लिए प्रभावी नहीं बन पड़ी है। जब पर्यावरण के विभिन्न घटक एक निर्णायक सीमा तक प्रदूषित हो चुके हों तो पर्यावरण विभाग को केवल समन्वयकारी भूमिका देना, इस दिशा में उठाया गया अप्रभावकारी कदम माना गया है। इसी प्रकार यह विभाग पर्यावरण के प्रति चेतना प्रसार का जो कार्य करता है उसका प्रभाव भी केवल शहरों की पढ़ी-लिखी जनता तक ही हो पाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह विभाग इस निमित्त प्रभावी भूमिका निष्पादित नहीं कर सका है। इस स्थिति के प्रतिकार की आवश्यकता है। प्रदूषण नियंत्रण हेतु इस विभाग की समन्वयकारी और सलाहकारी भूमिका को परिवर्तित कर वास्तविक शक्तियां दिए जाने का निर्णय किया जाना चाहिए तभी राज्य में विभाग की भूमिका का असर अनुभव किया जा सकेगा। पर्यावरण विषयक नीतियों के प्रभावी निष्पादन हेतु विभाग की संरचना में से निदेशालय को स्वतंत्र परिस्थिति प्रदान कर, अब तक हो गई त्रुटि के परिष्कार की आवश्यकता भी स्वयं सिद्ध है।

लोक प्रशासन विभाग,
जी. 804, गांधी नगर,
जयपुर-302004

(पृष्ठ 22 का शेष)

सहकारिता की भावना का विकास किया जाना चाहिए। इसके लिए गोष्ठियों, विचारमंचों का आयोजन तथा पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं वितरण किया जाना चाहिए।

सहकारी अंकेक्षण का वैज्ञानिकीकरण

सहकारी अंकेक्षण को वैज्ञानिक बनाने के लिए सहकारी विभाग के लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि अपने यहां पंजीकृत संस्थाओं का पूंजी संरचना के आधार पर वर्गीकरण करें। पूंजी संरचना एक कार्य व्यवसाय के क्षेत्र के अनुसार वृहत एवं मध्यम स्तर की सहकारी संस्थाओं में प्रबंध, अनियंत्रण, सदस्यता व अंशपूंजी आदि का विस्तृत वैज्ञानिक निरीक्षण किया जाए तथा आवश्यकतानुसार आन्तरिक अंकेक्षण प्रणाली को लांगू किया जाना चाहिए। साथ ही सहकारी अंकेक्षण विभाग का प्रशासनिक ढांचा वैज्ञानिक ढंग से किया जाना चाहिए।

सभी राज्यों के सहकारी अधिनियमों में एकरूपता

वर्तमान में सभी राज्यों द्वारा अपने-अपने यहां अलग-अलग सहकारी अधिनियम पारित किए हैं तथा सहकारी व्यवस्थाओं के संबंध में अलग-अलग प्रावधान किए हैं जिसके कारण स्थानीय स्तर से योजना बनाकर सभी राज्यों में लागू करने में कठिनाई होती है। अत: सहकारिता अधिनियम में एकरूपता लाना आवश्यक हो जाता है ताकि सहकारिता आन्दोलन को राष्ट्रीय एकता व राष्ट्रीय विकास की एकरूपता से सम्बद्ध किया जा सके।

निष्कर्ष

सहकारिता आन्दोलन जहां एक ओर नये क्षेत्रों मे पदार्पण कर रहा है वहीं दूसरी तरफ इसकी निष्पक्षता एवं विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लगता जा रहा है। सहकारिता को जन-आन्दोलन बनाने के लिए आम जनता को सहकारी संस्थाओं के प्रति विश्वस्त बनाए रखना आवश्यक है। इसके लिए इन संस्थाओं में व्याप्त अनियमिताओं को दूर करने के लिए सेवाओं में सुधार लाया जाना चाहिए तथा सहकारी अंकेक्षण प्रणाली में व्यापक सुधार कर, उसे प्रभावी एवं निष्पक्ष बनाया जाए।

ए/29, क्राइस्ट चर्च कालेज होस्टल, वि माल, कानपुर-1

भारत में कृषि विकास

सत्यव्रत 'आर्य'

सदियों से हमारा देश दासता की बेड़ियों में जकड़ा था। महापुरुषों के असीम बलिदानों के परिणामस्वरूप जब भारत को स्वतंत्रता मिली तो साथ ही साथ हमें बेरोजगारी, गरीबी एवं भुखमरी जैसी समस्याएं भी मिली। जब हम स्वतंत्रता की प्रभात का स्वागत करने आगे बढ़े साथ ही दृढ़ संकल्प के साथ हमने ''सुजलाम, सुफलाम, शस्य श्यामलाम'' का गीत भी गाया। पं. जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधान मंत्री बने। उन्होंने सबसे पहले यह घोषणा की कि सब प्रतीक्षा कर सकते हैं परन्तु कृषि नहीं। बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय विकास के लिए यह आवश्यक है कि भारत के लिए जीवंत एवं उत्पादकीय आर्थिक ढांचा तैयार किया जाए जिसमें भारत खाद्य पदार्थ के मामले में पूर्ण निर्भर हो सके।

देश ने कृषि के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रगति की है। पंचवर्षीय योजना के दौर पर 'हरित क्रांति' आई और आज हम कृषि के मामले में काफी आत्मनिर्भर हैं। इस समय हमारे देश में नए-नए नवीकरण यंत्रों के द्वारा खेती की जा रही है। योजनाबद्ध विकास के दशक अर्थात् 1960-61 में हमारा देश का खाद्यान्न उत्पादन 1950-51 की तुलना में लगभग 61 प्रतिशत से ज्यादा ही रहा। यह भारत विकास के लिए एक बड़ी सफलता है।

भारत में कृषि विकास अगर देखना है तो भारत के तटवर्ती इलाकों में देखा जाए। दक्षिण भारत चावल पर आत्मनिर्भर होता था आज वहां कई स्थानों में गेहूं, जौ की फसलें लहरा रही हैं।

उत्तर प्रदेश क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य है। लेकिन राज्य की प्रति व्यक्ति आय जो कि 1980-81 में 635 रुपए थी, वर्ष 1987-88 में 754 रुपये तक पहुंच गई। पंजाब में नये यंत्रों के द्वारा कृषि की जाती है। वहां कृषि का विकास दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। अधिकतम उपज के लिए सात आदान-प्रौद्योगिक, उन्नत बीज, उर्वरक, पौध संरक्षण उपकरण, सिंचाई तथा ऋण महत्व पूर्ण हैं। इनमें भी उन्नत बीज, उवर्रक व सिंचाई तो अत्यन्त महत्व पूर्ण है। और अगर हम कहें कि इन्हीं आदानों के द्वारा हमने पैदावार में वृद्धि की तो आश्चर्य न होगा। कृषि विकास में सबसे महत्वपूर्ण 'हरित क्रांति' की सफलता का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि बौनी किस्म की खादें और सिंचाई इस कामयाबी का आधार रहा है।

भारत को कृषि विकास की दृष्टि से देखा जाए तो उत्तर प्रदेश के बाद बिहार का कृषि के क्षेत्र में दूसरा स्थान है। बिहार राज्य की 86 प्रतिशत संख्या कृषि पर आत्मनिर्भर है। यहां की मुख्य खाद्य फसले चावल, गेहूं, मक्का, दलहन एवं आलू और नकदी फसले गन्ना, तिलहन, तम्बाकू, तथा जूट हैं। रांची के पठार पर चाय का उत्पादन किया जाता है। तिरहुत डिवीजन में आम, लीची, केला आदि फलों का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन होता है। चावल इस राज्य की प्रमुख फसल है, जो मुख्यतः गया, मुंगेर पूर्णिया, सहरसा, भागलपुर और मुजफ्फरपुर आदि जिलों में उगाई जाती है। स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में बिहार में भूमि सुधार के क्षेत्र में अनेक कार्यक्रम लागू किए गए और राज्य की कृषि का चहुंमुखी विकास हुआ। राज्य का वर्तमान स्वरूप 1 नवम्बर 1956 को अस्तित्व में आया। वर्तमान में राज्य में कृषि के मामले में सरकार ने नए कदम उठाए हैं।

प्रारम्भ में गांव में बैंकों की भूमिका नगण्य रही, किन्तु राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों का कार्य क्षेत्र ग्रामीण इलाकों में फैला, विभिन्न बैंकों ने गांव में अपनी शाखाएं खोलीं तथा इनकी आपसी होड़ से गांव में नवचेतना का उदय हुआ।

इस प्रकार देश में कृषि की प्रगति से जुड़े हुए सभी लोगों की कड़ी मेहनत और सुनियोजित कार्य ने भारत को कृषि क्षेत्र में महान उपलब्धि दिलायी है। इसमें प्रशासन, वैज्ञानिक प्रसार, कार्यकर्ताओं तथा अन्य संस्थाओं के साथ-साथ हमारे मेहनती कृषकों एवं खेतिहर मजदूरों का प्रमुख योगदान रहा, परन्तु उत्पादकता में सर्वाधिक बढ़ोत्तरी गेहूं की हुई जिसमें तमाम कृषि वैज्ञानिक 'हरित क्रांति' को गेहूं क्रांति की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त मानते हैं।

अभी हमें एक और लक्ष्य प्राप्त करना है। राष्ट्रीय कृषि आयोग के अनुसार 21वीं शताब्दी तक हमें लगभग 25.5 करोड़ टन खाद्यान्नों की जरूरत है जबकि अभी तक 15 करोड़ टन तक की सीमा को लांघ पाए हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमारी सरकार को कृषि की नवीनतम सघन प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना चाहिए और हमें योजना-बद्ध रूप से अभी से प्रयास करने होंगे।

ग्राम/पो.-देवगांव
जिला—हमीरपुर
(उत्तर प्रदेश)

भारत में ईंधन लकड़ी का संकट

म. वि. कुबडे

देश की 80 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है जिनके लिए ईंधन लकड़ी और पत्ते-टहनियां आदि ही ऊर्जा का एकमात्र स्रोत है। सब ओर जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, जो ईंधन लकड़ी के उत्पादन से कहीं अधिक है। नतीजा यह हो रहा है कि वन, खेती और पेड़-पौधे आदि की क्षमता बहुत कम हो गई है। यही नहीं, तेल की बढ़ती हुई कीमतों को देखते हुए ईंधन लकड़ी का इस्तेमाल निश्चय ही बढ़ेगा। इस तरह ईधन लकड़ी की वर्तमान कमी और मांग में वृद्धि के कारण जो संकट पैदा होगा उसे 'ईंधन लकड़ी का संकट' कहा जा सकता है।

भारी कमी

भारत में कुल वन क्षेत्र लगभग साढ़े सात करोड़ हैक्टेयर है, जो देश के कुल क्षेत्रफल का लगभग 22.8 प्रतिशत है। लेकिन इसमें से 4 करोड़ 56 लाख हैक्टेयर क्षेत्र से ही लकड़ी प्राप्त होती है और इसके अलावा एक करोड़ 48 लाख हैक्टेयर क्षेत्र ऐसा है, जहां से लकड़ी प्राप्त की जा सकती है। सरकार के स्वामित्व वाले वनों से 1979-80 में डेढ़ करोड़ टन ईंधन लकड़ी प्राप्त हुई। जहां तक गैर-वन क्षेत्रों से लकड़ी के उत्पादन का प्रश्न है, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 28वें सर्वेक्षण में एकत्र किए गये आंकड़ों से पता चलता है की गैर-सरकारी जमीनों और बागों तथा घरों के आस-पास लगे पेड़ों से लगभग तीन करोड़ टन ईंधन लकड़ी मिलती है। यह अनुमान इस तथ्य पर आधारित है कि गैर-वन क्षेत्रों में लगभग एक अरब 15 करोड़ घन मीटर लंबाई के पेड़ हैं। अगर पेड़ों के बड़ा होने की औसत दर 0.3 घन मीटर वार्षिक मानी जाए तो तीन करोड़ टन ईंधन लकड़ी प्राप्त होती है। इसके अलावा 40 लाख टन और ईंधन लकड़ी सामयिक वृक्षारोपण तथा ईंधन लकड़ी वृक्षारोपण जैसे विकास योजना कार्यक्रम के अन्तर्गत लगाये गए पेड़ों से प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत सातवीं योजना के अंत तक 5 लाख 20 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में पेड़ लगाए गए। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि इस समय 4 करोड़ 90 लाख टन ईंधन लकड़ी उपलब्ध है, जबकि ईंधन लकड़ी की कुल जरूरत 13 करोड़ 30 लाख टन है। इसमें गोबर और टहनियों-पत्तियों का इस्तेमाल शामिल नहीं है। इससे अच्छी तरह अनुमान लगा सकते हैं कि किस तरह मांग और पूर्ति के अंतर को पूरा करने के लिए वनों और पर्यावरण को नष्ट किया जा रहा होगा।

अनुमानित पूर्ति और अनुमानित आवश्यकता जो वास्तव में गांवों में ऊर्जा की जरूरत है, के इस भारी अंतर को दूर करना है तो कम-से-कम एक करोड़ 20 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में पेड़ों की ऐसी किस्में लगानी होंगी जो जल्दी बढ़ती हैं और जिनसे ईंधन लकड़ी प्राप्त हो सकती है। ऐसा करने से हर वर्ष प्रति हैक्टेयर 20 टन ईंधन लकड़ी का उत्पादन होने का अनुमान लगाया गया है। प्रति हैक्टेयर 3,000 रुपये खर्च हों तो इस काम के लिए अगले 10 वर्षों में 37 अरब रुपयों की जरूरत होगी। यह उद्देश्य प्राप्त करने में वित्तीय कमी भले ही रुकावट बने लेकिन इसके लिए जमीन की कोई कमी नहीं है। ऐसा अंदाज है कि बंजर भूमि, कृषि योग्य उजाड़ भूमि तथा सड़कों, रेल पटरियों और नहरों के किनारे पर परती जमीन के रूप में भारत में करीब 211 करोड़ हैक्टेयर भूमि उपलब्ध है। इनमें से अधिकांश भूमि पर ईंधन लकड़ी के पेड़ लगाए जा सकते हैं। इससे गांवों में ऊर्जा की जरूरतें पूरी हो सकती है। हां, भूमि के इन हिस्सों को पेड़ लगाने के लिए प्राप्त करने के वास्ते काफी प्रयास अवश्य करने पड़ेंगे।

वृक्षारोपण के ऊपर बताए गए कार्यक्रमों से हर साल करीब 2 करोड़ 40 लाख टन ईंधन लकड़ी मिल सकेगी। इस तरह मांग और पूर्ति का अंतर लगभग 6 करोड़ टन रह जाता है। यहां यह बात दोहराई जा सकती है कि पहले व्यक्त विचार के अनुसार एक करोड़ 20 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में पेड़ लगाये जाने की आवश्यकता है। जिनमें से 30 लाख हैक्टेयर जमीन में सातवीं योजना के दौरान पेड़ लगाए जाने का लक्ष्य रखा गया जिससे 90 लाख हैक्टेयर और क्षेत्र में पेड़ लगाने का काम बच जाएगा। अगर अगली पंचवर्षीय योजना में हम 90 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में वृक्ष लगाने में सफल हो जाते हैं तो इस शताब्दी के अंत तक हमें इस सारे क्षेत्र से 7 करोड़ 20 लाख टन ईंधन लकड़ी मिल सकेगी तालिका देखें।

यहां यह बताना उचित होगा कि वृक्षारोपण के जिन कार्यक्रमों का ऊपर ब्यौरा दिया गया है, उनसे ईंधन लकड़ी के रूप में देश की सम्पदा में तो वृद्धि होगी ही, पहले तीन वर्षों में इससे 30 से 50 लाख कार्य दिवसों का रोजगार भी पैदा होगा। इसके बाद पेड़ों की कटाई के समय इससे भी दुगने कार्य दिवसों का रोजगार पैदा होगा तथा काम पर लगे व्यक्तियों की आय भी अधिक होगी। इसके अलावा लकड़ी तथा अन्य उत्पादों की

सफाई और अन्य तरह के कामों में भी बहुत-से लोगों को रोजगार मिलेगा। इस प्रकार इस वृक्षारोपण के जरिए लाखों लोगों को रोजी-रोटी मिल सकेगी।

तालिका

(ऊर्जा के रूप में उपयोग के लिए)
(ईंधन की वर्तमान और भावी आवश्यकता)

ईंधन	वर्ष		
	1978-79	1982-83	1987-88
.1 कोयला	68.8	96.8	128.0
.2 तेल उत्पाद	141.1	163.8	197.6
.3 बिजली	84.4	128.3	173.6
.4 कुल वाणिज्यिक ऊर्जा	294.3	288.9	499.2
.5 गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा	198.0	204.4	202.9
.6 कुल ऊर्जा	492.3	593.3	702.0

इसमें बिजली उत्पादन के काम आने वाला कोयला शामिल नहीं है। इसमें बिजली उत्पादन के काम आने वाला ईंधन शामिल नहीं है।

वृक्षारोपण के इन सभी कार्यक्रमों से जितनी ईंधन लकड़ी मिलने का अनुमान लगाया गया है, उसके आधार पर दिखाई देता है कि पूर्ति वर्तमान मांग से एक करोड़ बीस लाख टन अधिक है। यहां यह बताना भी संगत होगा कि गैर-सरकारी जमीनों और खेतों में जिस तरह अंधाधुंध कटाई हो रही है उसको देखते हुए 3 करोड़ टन ईंधन लकड़ी के उत्पादन का अनुमान जो ऊपर व्यक्त किया गया है वह पूरा नहीं हो पाएगा, क्योंकि इस दशक के अंत तक यह उत्पादन बहुत कम हो जाने की आशंका है। इस तरह करीब एक करोड़ 80 लाख टन ईंधन लकड़ी का अभाव रहेगा।

नये ढंग के चूल्हों की जरूरत

ईंधन लकड़ी की यह कमी नये ढंग के चूल्हों और पकाने के बर्तनों के इस्तेमाल से पूरी की जा सकती है। इंडोनेशिया में किए गए अनुसंधान और गुजरात में हमारे अपने अनुभवों के आधार पर पता चलता है कि ईंधन लकड़ी से चलाये जाने वाले जो सामान्य चूल्हे हमारे घरों में हैं, उनमें 94 प्रतिशत ताप बेकार जाता है परन्तु चूल्हों के डिजाइन में सुधार करने से ईंधन लकड़ी की खपत में 70 प्रतिशत की कमी हुई है। भारतीय परिस्थितियों में अगर यह बचत 40 प्रतिशत मान ली जाए तो भी नए ढंग के चूल्हों और पकाने के बर्तनों के इस्तेमाल से 5 करोड़ 30 लाख टन ईंधन लकड़ी की बचत की जा सकती है।

पर एक बात यह भी है कि इन नये ढंग के बर्तनों और चूल्हों के इस्तेमाल और शव जलाने की नयी पद्धति अपनाने के लिए लोगों को तैयार कर पाने में हमें 20 प्रतिशत से ज्यादा सफलता शायद नहीं मिल पायेगी। वैसे शव जलाने के नए तरीकों से 60 प्रतिशत ईंधन बचाया जा सकता है। इस तरह यह बचत करीब एक करोड़ 80 लाख टन होगी।

ऊपर जो उपाय सुझाये गये हैं, उनसे ईंधन लकड़ी के मामले में देश की वर्तमान जरूरतें पूरी की जा सकती हैं। इसलिए गोबर तथा पत्ते-टहनियों आदि का इस्तेमाल कम करने के प्रयास करने पड़ेंगे, क्योंकि इन चीजों का अन्य कामों में उपयोग हो सकता है। अनुमान है कि देश में कुल 32 अरब 40 करोड़ टन गोबर प्राप्त होता है जिसमें 7 करोड़ 10 लाख टन गोबर जला दिया जाता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि ऊर्जा संबंधी आवश्यकताओं के लिए जितना गोबर जल जाता है, वह देश में रासायनिक खाद के कुल उत्पादन से अधिक है। अगर यह गोबर खाद के रूप में खेतों में डाला जाए तो अनुमान है कि अनाज के उत्पादन में साढ़े चार करोड़ टन की वृद्धि होगी। दूसरी ओर 7 करोड़ 10 लाख टन गोबर के स्थान पर 3 करोड़ टन और ईंधन लकड़ी इस्तेमाल होगी। अगर हम चाहते हैं कि कोयले और तेल के विकल्प के रूप में ईंधन लकड़ी इस्तेमाल की जाए तो हमारे लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम ईंधन लकड़ी का उत्पादन और बढ़ाने की संभावनाओं का पता लगाएं। इस दृष्टि से किसानों को ईंधन लकड़ी के मामले में आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में प्रयास किए जा सकते हैं। ऐसी गणना की गई है कि पांच सदस्यों के एक ग्रामीण परिवार को खाना पकाना आदि के लिए प्रति वर्ष साढ़े बारह लाख किलो कैलोरी ताप की जरूरत होती है। इसमें से 20 प्रतिशत जरूरत पत्ते-टहनियों आदि से पूरी की जा सकती है और बाकी 80 प्रतिशत के लिए ईंधन लकड़ी की आवश्यकता होगी। इस तरह एक परिवार को प्रति वर्ष 4,700 किलो कैलोरी प्रति किलोग्राम की ताप क्षमता और 18.9 प्रतिशत उपयोग क्षमता वाली लगभग 1.125 टन ईंधन लकड़ी की जरूरत होती है।

ऐसा समझा जाता है कि इस हिसाब से एक किसान को अपने खेतों की मेडों पर 2.2 मीटर के अंतर से प्रति हैक्टेयर 250 पेड़ लगाने होंगे। इससे वह हर सात वर्ष बाद 10 पेड़ काट सकेगा। यह भी हिसाब लगाया गया है कि युक्लिप्टस जैसे तेजी से उगने वाले पेड़ों से 1.125 टन ईंधन लकड़ी मिल सकती है।

इस समय जोत वर्गीकरण के अनुसार भारत में 14 करोड़ 55 लाख हैक्टेयर भूमि में खेती होती है। यह मानते हुए कि इसमें से 6 करोड़ हैक्टेयर भूमि में खेतों की मेडों पर पेड़ लगाए जा सकते हैं, इस प्रयास से 15 करोड़ टन ईंधन लकड़ी प्राप्त होगी।

इसलिए यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि खेतों की मेडों पर पेड़ लगाए जाने से गांवों के लोगों को घर में ही ईंधन लकड़ी उपलब्ध हो जाएगी और लकड़ी काटने या चुनने के लिए बाहर जाने का समय और शक्ति भी बचेगी। इसी तरह सरकार के नियंत्रण वाले वनों और बेकार पड़ी भूमि से मिलने वाली ईंधन लकड़ी का इस्तेमाल उद्योगों तथा अन्य कामों में किया जा सकेगा, जिससे तेल और कोयले की भी बचत की जा सकेगी।

नयी नीति

ईंधन लकड़ी की मांग और पूर्ति का अंतर दूर करने के उपायों की चर्चा के बाद अब यह विचार करना आवश्यक है कि ऊपर बताई गई योजनाओं और कार्यक्रमों पर सफलतापूर्वक अमल कैसे किया जाए? जैसा कि सामाजिक वृक्षारोपण के नाम से ही स्पष्ट है। इस दिशा में जो भी कार्यक्रम बनाए गए हैं, वे आम आदमी की जरूरतें पूरी करने के लिए हैं। इसलिए इन कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए आम लोगों का सहयोग बहुत आवश्यक है। इसी तरह पेड़ों की उन किस्मों की भी पहचान करने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए जो जल्दी बढ़ती हैं और जल्दी काटी जा सकती हैं।

अनुसंधान

ईंधन लकड़ी का उत्पादन बढ़ाने के लिए पहले ही काफी अनुसंधान कार्य किया गया है, पर अभी और बहुत कुछ किए जाने की जरूरत है। वन अनुसंधान संस्थान ने ईंधन लकड़ी के लिए जल्दी उगने वाली विदेशी किस्में लगाने के प्रयास किए हैं। इस दिशा में उल्लेखनीय सफलता 'सुबबूल' पेड़ लगाने में मिली है, जिससे खूब ईंधन और चारा मिलता है। जिस कारण सारी दुनिया में इसका महत्व बढ़ रहा है। इसी तरह संस्थान ने पेड़ों की और भी ऐसी किस्मों की जानकारी दी है जिनकी लकड़ी जलने पर ज्यादा ताप देती है। किसानों के लिए ऐसे पेड़ बहुत उपयोगी हो सकते हैं।

फिर भी अभी और अनुसंधान करने की जरूरत है, जिससे पेड़ों की और ज्यादा ऐसी किस्मों का पता लग सके, जिन्हें अलग-अलग तरह की जमीनों में उगाया जा सके। इसी तरह बेहतर चूल्हे और शवदाह-गृह आदि बनाने के लिए भी अनुसंधान करना होगा जिससे गांवों में ईंधन लकड़ी की जरूरत घटाई जा सकेगी। इस बारे में भी अनुसंधान किया जाना चाहिए कि जो लकड़ी इस समय उपलब्ध है, उसका बेहतर इस्तेमाल कैसे किया जा सकता है।

विकास का माध्यम वन

पेड़-पौधे कई तरह से हमारे काम आते हैं। पेड़ फल देते हैं। रहने के लिए मकान बनाना है या खाना पकाने के लिए आग जलानी है तो उसके लिए लकड़ी भी जंगल से ही प्राप्त होती है। पेड़-पौधों से निकलने वाली घास से हमारे जानवरों का पेट भरता है, जिससे हमें दूध, घी, मांस, ऊन आदि मिलता है। उनकी पत्तियां जहां तेज वर्षा से भूमि के कटाव को बचाती है, वहीं सड़कर कीमती खाद और मिट्टी में बदल जाती है, जिन पर हमारी भूमि की उर्वरा-शक्ति निर्भर करती है। पेड़ की जड़ें भूमि को जकड़ें रहती हैं, जिससे भू-स्खलन से बचाव होता है।

30 प्रतिशत वन चाहिए

जंगल पर्याप्त हो तो वर्षा यथासमय होती है। जिस पर हमारी खेती निर्भर करती है। पेड़ वायुमंडल में मौजूद नाइट्रोजन गैस को लेते हैं तथा आक्सीजन छोड़ते हैं। इस तरह वे उसमें मौजूद विष का पान करते हैं तथा उसकी अमृत से पूर्ति कर देते हैं।

वनों के महत्व को देखते हुए ही अपनी राष्ट्रीय वन नीति के अंतर्गत हमने निश्चित किया है कि सारे देश की 30 प्रतिशत भूमि पर वन होने चाहिए। एतदर्थ पहाड़ों की 60 प्रतिशत भूमि तथा मैदानों की 20 प्रतिशत भूमि जंगलों के अंतर्गत होनी चाहिए परन्तु वास्तविकता लक्ष्य से नितान्त भिन्न है। देश की मात्र 19.52 प्रतिशत भूमि में जंगल हैं। और उनमें भी घने किस्म के वन सिर्फ 10.88 प्रतिशत भूमि में है। यह हमारी अपनी कारगुजारियों का ही फल है। पहली पांच पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान वनों को विकास का माध्यम ही माना गया। उनके विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान हमारे नियोजकों को अपनी भूल का एहसास हुआ। प्रथम बार जंगलों के विनाश पर रोक लगाने की आवश्यकता महसूस की गई। विकास कार्यों के लिए जंगलों को तहस-नहस करने की प्रवृत्ति पर रोक लगाई गई। राज्य सरकारों को केन्द्र ने सलाह दी कि विकास कार्यों के लिए जंगलों को उजाड़ने की अनुमति न दी जाए। जब इस सलाह की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो भारत सरकार ने वन संरक्षण अधिनियम, 1980 जारी किया, जिसके अंतर्गत 10 हैक्टेयर से अधिक वन भूमि किसी भी विकास कार्यों के लिए अधिगृहित किए जाने के पूर्व केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेना अनिवार्य कर दिया गया है। सातवीं योजना काल में जीवित रहने के लिए जंगलों का संवर्द्धन जरूरी, का नारा दिया गया।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान जंगलों के प्रति बदलते दृष्टिकोण के अनुरूप ही उनके संरक्षण और संवर्द्धन पर व्यय किया गया परन्तु दृष्टिकोण में इस परिवर्तन के पूर्व ही हम अपने वनों के साथ बहुत ज्यादती कर चुके थे। यह नेशनल रिमोट सेन्सिंग एजेंसी द्वारा वर्ष 1972-75 तथा 1980-82 के दौरान वनों के अंतर्गत भूमि के आंकड़ों से विदित हो जाता है।

वर्ष 1975 में देश की 5,55,180 वर्ग किलो मीटर भूमि पर वन थे जो सन् 1982 में घटकर 4,63,470 वर्ग कि. मी. में ही रह गए। इस तरह सात सालों में 91,710 वर्ग कि.मी. भूमि से जंगल समाप्त हो गए। विनाश की यही रफ्तार रही तो अगले 35 सालों में देश से जंगल पूर्णतः समाप्त हो जाएंगे।

जनसंख्या वृद्धि से असर

जनसंख्या में वृद्धि का भी असर जंगलों के विनाश पर पड़ा है। वर्ष 1979 में योजना आयोग द्वारा ऊर्जा नीति पर नियुक्त कार्यकारी दल का कथन था कि देश के वनों की जलाऊ लकड़ी उपजाने की वार्षिक क्षमता 1.9 करोड़ टन है। इसके अतिरिक्त ग्रामीणों द्वारा प्रतिवर्ष जंगलों से भूमि में पड़ी सूखी और बेकार लकड़ी लगभग 2.8 करोड़ टन इकट्ठी की जाती है। इस तरह जंगलों से हर साल 4.7 करोड़ टन जलाने की लकड़ी ही प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त समझा जाता है कि 3.0 करोड़ टन लकड़ी बगीचे आदि व्यक्तिगत स्रोतों से प्राप्त की जाती है। इस प्रकार कुल 7.7 करोड़ टन जलाऊ लकड़ी प्राप्त होती है जबकि उसकी वास्तविक आवश्यकता 13.3 करोड़ टन की है। स्पष्ट है कि प्रतिवर्ष 5.61 करोड़ टन लकड़ी जंगलों से अवैध रूप से प्राप्त की जाती है, जिससे जंगलों का विनाश ही होगा।

कुछ ऐसी कहानी भवन निर्माण और उद्योगों के लिए आवश्यक लकड़ी की भी है। भारतीय वन सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1987 में इस हेतु 2.7 करोड़ घन मीटर लकड़ी की जरूरत थी, जबकि एतदर्थ हमारे वनों की उत्पादन क्षमता केवल 42 करोड़ घन मीटर ही थी। शेष 1.5 करोड़ घन मीटर लकड़ी की आपूर्ति के लिए वन अधिकारी और चोर दोनों जंगलों के साथ ज्यादती करते हैं। जहां वन अधिकारी उचित सीमा से अधिक वनों का कटान करवा लेते हैं, वहीं वनों की चोरी पर पनपने वाला गिरोह येन-केन-प्रकारेन लकड़ी प्राप्त कर ही लेता है।

देश की 1.25 करोड़ हैक्टेयर भूमि में फैले चारागाहों की कहानी भी कुछ बेहतर नहीं है। सदियों से उनमें जानवर बेरोक-टोक चर रहे हैं। फलतः उनमें नई घास को न तो उगने का मौका मिलता है और न ही किसी प्रकार उनकी उत्पादकता बढ़ाने के प्रयास किए गए हैं। फलतः वे खस्ताहालत में हैं, जिनका वनस्पति की कमी के कारण तेजी से भू-क्षरण हो रहा है। ऐसी हालत में पेट भरने के लिए जंगलों की ओर बढ़ते जानवरों के बेइन्तहा बढ़ती तादाद ने हालत बदतर कर दी है। देश में पशुओं की संख्या 1951 में 29.2 करोड़ थी जो 1987 में 46.90 करोड़ हो गई। इसके अलावा बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए कृषि योग्य भूमि के खातिर भी चारागाहों को हथिया लिया गया है। अतः चारागाहों के क्षेत्रफल में कमी भी हो गई है। जंगलों पर पशुओं के इस निरंतर बढ़ते दबाव के फलस्वरूप उनमें पेड़-पौधों का पनपना कठिन हो गया है। फलतः वे भी भू-कटाव के शिकार होने लगे हैं।

आदिवासियों में चल खेती की प्रथा ने जंगलों के विनाश में योग दिया है। इस प्रथा के अन्तर्गत आदिवासी जंगलों को काटकर जलाते हैं तथा वहां पर खेती करते हैं। दो-तीन साल तक इस प्रकार तैयार भूमि पर खेती करने के बाद वे दूसरी जगह पर जाकर खेती करने लगते हैं। तीन से लेकर 15 साल के क्रम में वे पुनः पुरानी जगह पर आकर खेती करने लगते हैं। देश के 13 राज्यों की 43.50 लाख हैक्टेयर भूमि में 66.22 लाख आदिवासी परिवार चल-खेती करते हैं, जिसको उत्तर-पूर्व में 'झूम' कहा जाता है तो उड़ीसा और दक्षिण में 'पौडू'। इससे जंगलों के कटान के अलावा भूमि क्षरण भी होता है।

भारत की 5.7 करोड़ आदिवासी आबादी का 12 प्रतिशत भाग चल खेती पर निर्भर करता है। शेष जंगलों के अन्दर अथवा उनके इर्द-गिर्द स्थायी तौर पर निवास करते हैं। अपने आवास तथा जीविका के लिए वे लगभग पूर्णतया जंगलों पर निर्भर करते रहे हैं। उनकी जनसंख्या में वृद्धि का जंगलों पर विपरीत असर पड़ना स्वाभाविक है। वनों के संरक्षण के लिए की जाने वाली कोई भी कार्रवाई उनको पसन्द नहीं है। वनों के बेरोक-टोक उपयोग में शासन की ओर से कोई भी प्रयास वे अपने विरुद्ध मानते हैं। आधुनिक समय में बड़ी बहुउद्देशीय नदी परियोजनाओं के फलस्वरूप उनकी बस्तियों के जलाशयों के डूब क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाने से भी उनका रोष बढ़ता ही चला जाता है।

देश में 1951 से 1980 तक राज्य सरकारों ने 26.23 लाख हैक्टेयर वन भूमि कृषि के लिए आबंटित की। इसी अवधि में वनों के अन्तर्गत 17.05 लाख वर्ग हैक्टेयर भूमि नदी घाटी परियोजनाओं, सड़कों आदि के लिए दी गई। उसके अलावा जंगलात की 7,00627 वर्ग हैक्टेयर भूमि अवैध कब्जों के अन्तर्गत थी।

वनों की दशा में सुधार के लिए हाल के वर्षों में समुचित उपाय किए गए हैं। देश के कुल क्षेत्रफल के चार प्रतिशत में 69 राष्ट्रीय उद्यान और 399 वन्य-जन्य अभ्यारण्य बनाए गए हैं। वन्य-जन्तुओं की विलुप्त होती प्रजातियों के बचाने के ध्येय से सृजित इन क्षेत्रों में लगे प्रतिबन्धों की वजह से जंगल भी फल-फूल उठते हैं।

दिघोरी नाके के पीछे,
जनता गृहनिर्माण सोसायटी,
नागपुर-440024

ग्रामीण संस्कृति और सम्प्रेषण माध्यम

डा. अनिल कुमार उपाध्याय

यह सर्वविदित है कि भारत कृषि प्रधान देश होने के साथ ही साथ ग्राम प्रधान देश भी है। अतः निश्चित तौर पर हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति की आत्मा आज भी गांवों में ही निवास करती है। भारत ने हजारों वर्ष की गुलामी झेली है तथा इन हजार वर्षों में भारत पर सैकड़ों विदेशी आक्रमणों के साथ ही साथ भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को तहस-नहस करने का बार-बार प्रयास किया गया है परन्तु हमारी संस्कृति की जड़ें ग्रामीण अंचलों में इतनी मजबूत रही हैं कि उन तक ये विदेशी आततायी कभी पहुंच नहीं सके हैं। यही कारण है कि हमारे समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते हुए हजारों वर्षों से संजोयी हुई हमारी सांस्कृतिक विरासत आज भी कायम है।

परन्तु चिन्ता का विषय यह है कि हमारी यह सांस्कृतिक विरासत अब कितने दिनों तक कायम रह पाएगी क्योंकि जिस तेजी से बिना ठीक से सोचे-विचारे हुए विदेशों से आयातित टेलीविजन कार्यक्रमों एवं आडियो-वीडियो कैसेट्स आदि का हम प्रयोग कर रहे हैं वे हमारी संस्कृति के लिए घातक हैं। आज भारत सांस्कृतिक संकट मे गुजर रहा है। वास्तव में यदि देखा जाए तो स्वतंत्रता के बाद से ही अंग्रेजों के आदर्श पर शासन करने वाले आई.सी.एस. या आई.ए.एस. जिनका कुलीन तंत्र से सम्बंध रहा है वे ही हमारे नीति नियामक रहे हैं। जबकि उनके पास कोई 'सांस्कृतिक परिकल्पना' ही नहीं है। अतः मनोरंजन के नाम पर जो भी ऊल-जलूल व विदेशी फूहड़ संस्कृति पर आधारित कार्यक्रम हमें दिखाए जाते हैं हम उसी को देखने को बाध्य हो जाते हैं। इलेक्ट्रानिक मीडिया के केन्द्रीयकृत स्वरूप की यह प्रवृत्ति हमारी ग्रामीण संस्कृति के लिए और भी ज्यादा घातक है। यदि समय रहते तत्काल एक योजना बनाकर इन विदेशी आयातित फूहड़ कार्यक्रमों पर रोक नहीं लगाई गई तो हमारी पीढ़ी दर पीढ़ी द्वारा कठोर तपस्या से अर्जित हजारों वर्षों की सांस्कृतिक धरोहर का सर्वनाश कुछ ही वर्षों में हो जाएगा और जो सांस्कृतिक क्षति हमें हजारों वर्ष की गुलामी भी न दे सकी वह क्षति हमें अभिजात्य वर्ग की ओर से आधुनिक टेलीविजन एवं वीडियो फिल्में कुछ ही वर्ष में दे देंगी।

नई तकनीकी व इलेक्ट्रानिक मीडिया के आने से जहां प्रसन्नता है, वहीं भारतीय परिस्थितियों में उनके सही प्रयोग को लेकर बुद्धिजीवियों में चिन्ता व्याप्त है। वीडियो का जिस प्रकार भारत के गांवों में व्यापारिक प्रसार हो रहा है और बेरोजगारी से त्रस्त शिक्षित नवयुवक जिस प्रकार कम समय में अधिक धन कमाने को उत्सुक है, उसे देखते हुए इस आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता है। इन कार्यक्रमों को देखने से गांवों में क्या-क्या सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकृतियां पैदा होंगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

ऐसे में प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक पी.सी. जोशी की रिपोर्ट की प्रासंगिकता नजर आती है, जिसमें उन्होंने कहा है, "उभरते इलेक्ट्रानिक मीडिया के लिए कार्यक्रमों की कोई योजना न होने के कारण राष्ट्रीय सांस्कृतिक अस्मिता को खतरा पैदा हो जाएगा। बाहरी सांस्कृतिक आक्रमण रोकने के लिए आयातित टेलीविजन कार्यक्रमों पर अंकुश जरूरी है। सांस्कृतिक स्वतंत्रता और राष्ट्रीय संस्कृति को मजबूत करने के लिए कार्यक्रमों का सकारात्मक ढंग से नियोजन जरूरी है।"

इस प्रकार यदि हम वांछित सांस्कृतिक प्रभावों और परिणामों को सही रूप में गांवों तक पहुंचाना चाहते हैं तो हमें भारतीय परिवेश में स्थानीय संस्कृति व भाषा में बने कार्यक्रमों का निर्माण करा कर उनका विकेन्द्रीकरण करना होगा साथ ही आधुनिक तकनीकी को गांवों तक पहुंचाने के साथ ही साथ उनके सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे में परिवर्तन पर भी बल देना होगा।

डा. जोशी का यह कथन सत्य है कि आयातित व अनियंत्रित टी.वी. कार्यक्रमों आदि के चलते आज भारत में एक नए 'इलीट' एक 'नए मध्य वर्ग' का तेजी से उदय हो रहा है। यह उभरता हुआ 'इलीट' आज भी पूर्व के पतनशील सामन्ती मूल्यों और पश्चिम के उभरते उपभोक्तावाद और नग्न सुखवाद की वर्ण संकरी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। यदि समय रहते इन प्रवृत्तियों को एक 'व्यापक नीति' बनाकर नहीं रोका गया तो इलेक्ट्रानिक माध्यमों पर आधारित यह आधुनिक सम्प्रेषण तकनीक भारत के बचे-खुचे सांस्कृतिक ढांचे को भी नष्ट कर देगी। अभी तक भारत के दूरस्थ और अविकसित ग्रामीण अंचलों में पाश्चात्य सभ्यता पर आधारित धनलिप्सु, उपभोक्तावादी, फूहड़ और अश्लील कार्यक्रमों का प्रभाव नहीं पड़ सका है। अतः अभी समय है कि हम अपनी एक व्यापक राष्ट्रीय नीति बनाकर अपनी ग्रामीण संस्कृति को नष्ट होने से बचा लें।

पत्रकारिता एवं जन सम्प्रेषण विभाग,
काशी विद्यापीठ, वाराणसी-221002

रजाई

मुनेश्वरी तिवारी

चरण ने ध्यान से एक बार सारे सामान को देखा। रिश्ते-नाते वालों ने जो-जो सामान बताया था सब कुछ छोटा भाई खरीद लाया था। श्राद्ध-कर्म कराने वाले पंडित के लिए नए कपड़े, कई तरह के बरतन, कई साड़ियां-ब्लाउज, खाट, गद्दा, तकिया और रजाई। चरण की नजर सब कुछ से हटकर रजाई पर जा टिकी। कुछ देर तक अपलक वह उस रजाई को देखता रहा। फिर मंथर गति से आगे बढ़कर वह उस रजाई के पास आ खड़ा हुआ। कुछ क्षणों तक उसे देखते रहने के बाद उसने झुककर रजाई को उठाया और इस तरह उसे देखने लगा जैसे उसमें उसकी कोई अमूल्य चीज खो गई हो। और फिर कुछ ही क्षणों बाद उसकी आंखों से पहले तो आंसू के कुछ बूंद टपकीं, फिर वह रजाई में ही मुंह ढककर सुबक-सुबक कर रो पड़ा।

आस-पास कई लोग खड़े थे जो सामान को इधर-उधर करने में लगे थे। कुछ लोगों का ध्यान आने वालों के स्वागत में ही लगा था। अब तक चरण की तरफ किसी ने ध्यान नहीं दिया था, किन्तु अचानक ही उसकी रुलाई ने बहुतों का ध्यान अपनी तरफ खींच लिया। कुछ लोग जल्दी से लपककर उसके पास आए। जिन लोगों के हाथों में सामान था वे भी रुक कर चरण को ही देखने लगे। कई लोगों के चेहरे भी उदास हो आए। कुछ लोगों ने चैन की सांस लेते हुए कहा, "चलो पत्थर तो पिघला।" दस दिनों में इसकी आंखों से एक बूंद आंसू नहीं टपका था। बेचारा नहीं रोता तो मां के गम में ही पागल हो जाता। छोटा भाई भी पास में ही खड़ा किसी से कुछ बात कर रहा था किन्तु अचानक बड़े भाई को रोते देखकर वह अपनी बात बीच में ही छोड़कर उधर लपका और चरण के कंधे पर हाथ रखते हुए बोला, "भैया, धीरज रखो, इस तरह दिल छोटा करने से क्या होगा।" बोलते-बोलते उसका गला भी भर आया। कुछ और लोगों ने भी छोटे भाई की हां में हां मिलाई।

"हां भाई, अब रोने से क्या होगा? भला इस दुनिया में अजर-अमर कौन है? सभी को एक न एक दिन उस धाम जाना ही पड़ता है।" एक आदमी बोला।

दूसरा आदमी उसके हाथ से रजाई लेते हुए बोला, "मां तो पूरी उमर गुजार कर गई है चरण....जितनी धरम-करम वाली वह थीं उतने पवित्र दिन उनका इंतकाल भी हुआ। मकर संक्रांति के दिन मरने वाला तो सीधा बैकुण्ठ जाता है। तुम्हें तो खुश होना चाहिए कि तुम्हारी मां सुखी-स्वस्थ जीवन बिताते हुए मरीं। मरते दम तक किसी को कष्ट नहीं दिया।"

वह चुपचाप सुनता रहा सब कुछ। उसके हाथ से रजाई छूट गई थी और फिर पहले की तरह नीचे पड़ी थी। चरण ने अपनी आंखों को रूमाल से साफ किया और फिर एक नजर उस रजाई पर डालकर वह वहां से हट गया। ऊपर से उसने अपने को संतुलित और शांत दिखाने की कोशिश की पर अन्दर ही अन्दर वह बहुत बेचैन और अशान्त हो उठा था। आंखों को उसने आंसू बहाने से रोक दिया था पर मन के भीतर आंसुओं का समुद्र लहरा रहा था। दस दिनों से रुका तूफान जैसे सारे किनारों को तोड़कर उमड़ पड़ना चाहता था। किन्तु उसने कठोरता से अपने को रोका—नहीं, यह अवसर कमजोर पड़ने का नहीं है।

पंडित उसे ही बुला रहा था। भाई और अन्य लोगों के साथ वह आगे बढ़ा और पंडित के पास आ कर बैठ गया। उसने एक नजर से सनातन धर्म मंदिर के कक्ष में उपस्थित लोगों को देखा-पांच-छह सौ से लोग कम क्या होंगे। पंडित एक भजन गा रहा था। उसकी आवाज माइक से चारों तरफ फैल रही थी। लोग शांतचित होकर सुन रहे थे। मां को लोग कितना चाहते थे, यह यहां उपस्थित लोगों की संख्या देखकर ही समझा जा सकता है। चरण के मन को कुछ शांति मिली।

भजन बंद हो गया तो पंडित ने कोई मंत्रपाठ शुरू कर दिया। फिर शुरू हुआ कर्मकांड। पंडित जैसे-जैसे कह रहा था, चरण उसी तरह सब कुछ किए जा रहा था। किन्तु उसका मन अभी भी उस रजाई में ही अटका था। एक कसक, एक टीस से उसका मन भरा हुआ था। मां के प्रति अचानक वह अपने आपको अपराधी महसूस करने लगा था।

किस तरह अचानक ही सब कुछ हो गया था। उस दिन वह आफिस में था, अपने काम में व्यस्त, कि तभी छोटे भाई का फोन आया था "भैया,...आप जल्दी घर आ जाइए..."भाई के स्वर में जो थरथराहट थी, उससे वह घबड़ा गया। एक आशंका से भर उठा। इधर कई वर्षों से उसकी पत्नी बीमार चल रही थी। कई बार मौत के करीब जा-जाकर बची थी। उसकी बीमारी ने उसे हर तरह से पस्त कर दिया था। हर तरह के इलाज के बाद भी वह स्वस्थ नहीं हो पा रही थी। पता नहीं ऐसा कौन-सा रोग लगा था उसे। चरण अपनी पत्नी को लेकर जब भी चिन्तित होता, उसकी बूढ़ी मां अक्सर उसके पास बैठकर उसे समझाती, "घबड़ा नहीं पुत्तर, रब दी जो मर्जी होयेगी वो तो भुगताना ही है।" मां के सांत्वना भरे शब्द उसको क्षणिक दिलासा तो जरूर दे जाते किन्तु मन तो अशान्त ही

रहता। इस अशान्ति ने उसे भक्ति की ओर भी मोड़ा था। शायद कोई देवी-देवता ही उसके कष्ट को दूर कर दें।

वह आफिस से घर लौटता तो अपनी पत्नी को लाचार खाट पर पड़े हांपते-कराहते देखकर उसका दिल फट पड़ता। पत्नी का कष्ट उससे सहन नहीं होता था परन्तु वह कितना लाचार था कि चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता था। पत्नी की बीमारी के कारण ज्यादा दिनों के लिए कहीं आना-जाना भी उसने छोड़ दिया था। उसकी कोशिश यही होती कि वह ज्यादा से ज्यादा समय पत्नी के पास ही रहे। उसने अपने आप को चारों तरफ से एक दम समेट लिया था और जब-जब भी उसे लगा कि अब पत्नी ने उसका साथ छोड़ा, तब-तब वह अपने को और अधिक टूटता हुआ महसूस करता। किन्तु हर बार पत्नी बच जाती और उसकी आस्था भगवान में और बढ़ती चली जाती, "तेरी दया अपार है प्रभु।"

किन्तु छोटे भाई की घबड़ाहट भरी आवाज सुनकर उसके दिल की धड़कन अचानक ही बहुत तेज हो गई, "क्या बात है महेश क्या हुआ?"

"मां को अचानक ही दिल का दौरा पड़ा भैया और वह..." और उधर से एक लम्बी सिसकारी उठने के साथ ही फोन कट गया जैसे आगे की बात कहने की हिम्मत महेश में न रही हो। वह सुन्न-सा टेलीफोन का रिसीवर हाथ में लिए अपनी कुर्सी पर बैठा ही रह गया। मां के बारे में तो उसने ऐसा सोचा भी नहीं था। किन्तु यह क्या हो गया? मां तो एक दम स्वस्थ थी, रोज सुबह-शाम मंदिर में जाकर पूजा-पाठ किया करती थी। अपनी बहु की देखभाल में भी उसने कमी न आने दी थी। चरण के बच्चों को उसी ने पालपोस कर बड़ा किया था। बच्चे दादी से ही ज्यादा घुले-मिले भी रहते। अड़ोस-पड़ोस के लोग भी कितने खुश थे मां से। किसी के यहां कोई आयोजन-प्रयोजन हो तो मां अवश्य सम्मिलित होती थी। पड़ोसियों के दुख-दर्द में वह हमेशा हिस्सा बंटाती थी।

कुछ वर्ष पहले जब महेश ने पास में ही अपना मकान बनवाया था तो मां उसके साथ ही रहने चली गई थी। तब चरण को बहुत दुख हुआ था। उसे लगा था मां महेश को उससे ज्यादा चाहती है। कहावत भी तो है कि मां को अपने छोटे बेटे से ज्यादा प्यार होता है। उसने तब कुछ कहा नहीं था पर कई दिनों तक वह काफी उदास रहा था। किन्तु वह देखता कि मां भले ही महेश के साथ चली गई है किन्तु उसका ज्यादातर समय इसी घर में गुजरता है। वह अपनी बीमार बहू की सेवा में लगी रहती है। चरण की बेटी संगीता ने घर को पूरी तरह सम्भाल लिया था। खाना भी वही बनाती। फिर भी मां की नजरें इस घर पर टिकी रहतीं। कहीं कोई कमी न रह जाए, चरण और उसके बच्चों को किसी तरह का कष्ट न हो।

फिर भी चरण की उदासी नहीं कटी थी। शायद मां ने भी इस बात को समझा था, तभी वह एक दिन चरण के पास बैठकर प्यार से बोली थी, "देख पुत्तर, तू मेरे मन की बात नहीं समझेगा। अरे तुम दोनों तो मेरी दोनों आंखें हों, जितना प्यारा मेरे लिए महेश है उतना ही तू। परन्तु मेरा महेश के यहां रहना ही सही है बेटा?"

"भला क्यों मां? यहां तुम्हें क्या कष्ट था?"

"कैसी बात करता है रे। भला कष्ट कैसा? परन्तु बेटे, मैं बूढ़ी हो चली, अब मुझसे कोई ज्यादा काम-धाम तो होता नहीं, ऐसे में...अब तू तो देख रहा है बेटे कि बड़ी बहू तो कुछ करने से लाचार है। बेचारी संगीता क्या-क्या करेगी? वह तुम लोगों को देखेगी, अपनी मां की सेवा करेगी या मुझको लेकर परेशान होगी? मेरी बात समझ रहा है न बेटे? मैं नहीं चाहती कि मेरे बुढ़ापे का बोझ तुम लोगों पर पड़े। और छोटी बहू तो एकदम ठीक-ठाक है—वह हंस-गाकर मेरा बोझ सह लेगी।"

चरण अवाक होकर मां का मुंह देखता ही रह गया था। मां की बातों में कितनी बड़ी सच्चाई थी और इसी सच को वह अब तक समझ न सका था। वह ग्लानि से भर उठा था और बच्चों की तरह मां के घुटनों पर सिर रखकर फफक पड़ा था। किन्तु उस दिन के बाद से मां का ध्यान उसके परिवार के दु:ख-सुख पर और अधिक केन्द्रित हो गया।

चरण जब तक छोटे भाई के घर पहुंचा था, मां की अर्थी सजाई जा चुकी थी। वह समझ नहीं पा रहा था कि वह क्या करे। बस चुपचाप मां के शव के पास जाकर खड़ा हो गया और अपलक उसे देखता रहा। आंखें जैसे पथरा गई हों, एक बूंद पानी तक नहीं उतरा उसमें। छोटा भाई उसे देख कर उसके पास आया था और उसके कंधे का सहारा लेकर फूट-फूटकर रो पड़ा था। उसकी लाल-लाल फूली-फूली आंखें बता रही थीं कि वह पहले भी बहुत रोया होगा। किन्तु तब भी चरण की आंखें उसी तरह शून्यवत मां के चेहरे पर टिकी रहीं। उसकी पत्नी मां के पास बैठी रो रही थी। छोटे भाई की पत्नी और उसकी बेटियां रो रही थीं। और भी कई औरतें आंसू बहा रही थीं। किन्तु चरण खामोश था। न तो होंठों पर शब्द न आंखों में पानी। कुछ लोगों ने उसे हैरानी से देखा-क्या मां की मौत का कोई दर्द नहीं इसे? फिर इस तरह बेगानों की तरह क्यों खड़ा है। महेश की तरह यह भी रोता क्यों नहीं? किन्तु वह नहीं रोया। वह मन ही मन सिर्फ अपने आप को समझा रहा था। यह तो होना ही था एक दिन। यह तो दुनिया का नियम है। किसके

मां-बाप नहीं मरते। किन्तु इस तरह, इतना अचानक। क्या इतना बड़ा अपराधी है वह कि मां ने उसका चेहरा भी नहीं देखना चाहा? फिर वह मन ही मन बुदबुदाने लगा—मां मुझे क्षमा कर देना, क्षमा कर देना मां कि मैं तुम्हारी अन्तिम इच्छा भी पूरी न कर सका।

अन्तिम इच्छा?

"मृतक की जो इच्छाएं अधूरी रह गई हों उन्हें, पूरा करना उसकी संतान का धर्म है।" पिंडदान करवाता पंडित कह रहा है, "आप याद कीजिए कि आपकी माताजी की कोई इच्छा अधूरी तो नहीं रह गई? मृतात्मा भटके नहीं, इसलिए उचित दान-दक्षिणा देना भी संतान का धर्म है।"

मां की अन्तिम इच्छा क्या थी?

चरण के सामने मां का सजीव चेहरा उभर आया। उस दिन रविवार की छुट्टी थी। वह घर से बाहर एक खाट डालकर बैठा धूप सेंक रहा था।

कड़ाके की ठंड थी उस दिन। कुछ देर बाद ही मां एक शाल ओढ़े उसके पास आ बैठी थी और बातों ही में बोली थी—"पुत्तर तू मेरे लिए जयपुर से एक रजाई मंगवा दे, वह हल्की भी होती है और गरम भी। उसे शरीर पर डालकर मैं बाहर धूप में भी बैठ सकती हूं।"

"ठीक है मां, कोई जयपुर जाएगा तो जरूर मंगा दूंगा।" चरण ने कहा था। किन्तु यह संभव कहां हुआ? यह नहीं कि कोई जयपुर गया ही नहीं, उसके कई परिचित इस बीच जयपुर गए, खुद उसका बड़ा बेटा अपने घर के मामले में इस बीच दो बार जयपुर हो आया। किन्तु रजाई न आ सकी। जब जब भी उसने सोचा कि रजाई मंगा दे किसी न किसी कारण यह सम्भव नहीं हो पाया। बाद में, अब तो ठंड बीतने ही वाली है, अगले वर्ष मंगा दूंगा, सोचकर वह इस बात को एकदम टाल गया था। किन्तु वह अगला वर्ष? कहां आ पाया वह वर्ष? मां ने तो उसे इतना अवसर भी नहीं दिया कि वह मां से क्षमा ही मांग सकता।

और आज वह मां की उपयोग की एक-एक चीज पंडित को दान में दे रहा है। यही उसका धर्म है। पंडित कहता है, "इस दान का सारा पुण्य मां की आत्मा को मिलेगा।" तो क्या मां की वह अदृश्य आत्मा इन चीजों का उपयोग करेगी? वह मन ही मन हंसा। उसकी इच्छा हुई कि वह जोर से ठठाकर हंस पड़े—अब एक रजाई का दान दूं या दस का, उसका क्या लाभ। मां तो एक रजाई के लिए तरसते-तरसते ही मर गई।

किन्तु वह न हंस सका, न कुछ बोल सका क्योंकि सभी उपस्थित लोग मां की आत्मा की शांति के लिए मौन खड़े हो गए थे। वह भी चुपचाप उठकर खड़ा हो गया, मौन, किन्तु मन ही मन बुदबुदाता रहा, "मुझे माफ करना मां, मुझे माफ करना।" □

वीरान सफर

नवीन

वीरान से इस शहर में, उदास-सी डगर है,
सूनी-सी है मंजिल, तनहा कोई मगर है।
सांसों की यह खामोशी, ख्वाबों के टूटे मंजर,
किससे कहें अब ईसां, तनहा तेरा सफर है।।

जख्मों का है दरिया, दर्दों का है समंदर,
तू महज है अकेला, न कोई हम सफर है।
आंसू की है चंद बूंदे, आहों का है मौसम,
गमगीन क्यों है ईसां, तनहा तू अगर है।।

जो दुख से तू न खेला, जो दर्द तू न झेला,
कैसे कटेगा तुझसे दुनिया का अब यह मेला।
कुछ दर्द और पी ले, कुछ गम के संग जी ले,
खुशी के दिन अब बीते, दर्दीला यह सफर है।।
देख दर्द का हर सपना, ले दर्द को तू अपना,
कुछ तू भी जी लेगा, कुछ दर्द पी लेगा।
होठों की यह नवीन खामोशी, आंखों का कुछ न कहना,
यह फीकी हसरतों का बस फीका-सा सफर है।।

शहद की उपयोगिता

अभय कुमार जैन

शहद मधुमक्खियों द्वारा प्रदत एक बहुत ही उपयोगी पदार्थ के साथ-साथ औषधि भी है। यह एक विशुद्ध प्राकृतिक खाद्य पदार्थ है। स्वस्थ बने रहने के लिए मानवशरीर को जिन तत्वों की आवश्यकता होती है, वे सभी तत्व शहद में विद्यमान होते हैं। यह सभी उम्र के लोगों के लिए लाभकारी है। सम्पूर्ण विश्व में शहद का महत्व व प्रयोग प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक चला आ रहा है। आज तक कोई भी ऐसी तरल मीठी वस्तु की खोज नहीं कर सका जो शहद से अधिक शुद्ध और मीठी हो। शहद अपने स्वास्थ्य प्रदायी गुणों के साथ हजार वर्षों तक अपरिवर्तित रह सकता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में शहद को बड़ा महत्व दिया गया है। दवा को अधिक प्रभावी व कारगर बनाने की दृष्टि से दवा को शहद के साथ लेने के लिए कहा जाता है। शहद में पौधों, सब्जियों, फलों एवं फूलों को ही नहीं मांस तक को खराब न होने देने की अद्भुत क्षमता है। अतः यह शरीर के अंदर जाकर सड़न को रोकता है, शरीर को स्वच्छ करता है तथा व्याधियों से बचाता है। कब्ज को दूर करता है, शरीर को पुष्ट तथा शक्तिशाली बनाता है। कैंसर का प्रतिरोध करने में भी शहद मददगार है। एक अध्ययन के अनुसार मधुमक्खी पालने वाले प्रति एक लाख व्यक्तियों में केवल 0-3 प्रतिशत में कैंसर पाया गया है जबकि अन्य पेशे के लोगों में यह 10 गुना पाया गया। अध्ययन के अनुसार घावों को तेजी से भरने में भी शहद मदद पहुंचाता है। शहद फोड़ा, फुंसी तथा अल्सर के रोगियों के लिए बड़ा लाभकारी है तथा दर्द एवं जलन को शांत करता है।

शहद हृदय रोग के लिए भी एक श्रेष्ठ औषधि है। विशेषज्ञों का कहना है कि हृदय गति को तेज करने के लिए शहद का प्रयोग अति उत्तम है। शहद हृदय की कमजोर पड़ गई मांस-पेशियों को मजबूत बनाता है तथा हेमोग्लोबिन का निर्माण करता है। इंग्लैंड के पेट की बीमारियों के विशेषज्ञ डा. अर्थनार लेन का कहना है कि शहद पेट की बीमारियों के लिए रामबाण है। पाचनक्रिया की अनियमितता, यकृत की दुर्बलता तथा शिथिलता में यह टानिक का काम करता है। शहद तपेदिक, खांसी और दुर्बलता आदि को दूर करता है। अदरक या पान अथवा तुलसी के रस या मुलहठी के चूर्ण के साथ शहद दिन में तीन-चार बार चाटने से खांसी ठीक हो जाती है। शहद को पानी में डालकर कुल्ला करने से मुंह के छाले ठीक हो जाते हैं। उल्टी होने पर शहद और नींबू मिलाकर थोड़ा-थोड़ा कई बार पीने से उल्टी रुक जाती है। गर्म पानी में शहद डालकर पीने से मोटापा कम हो जाता है। दूध के साथ सेवन करने से शरीर का दुबलापन दूर हो जाता है। रात को सोते समय पानी में शहद मिलाकर पीने से नींद अच्छी तरह आती है।

शहद का नियमित सेवन करने से हमारे शरीर में हेमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ती है। इसके सेवन से मुंह व दांतों की छोटी-मोटी तकलीफें अपने आप दूर हो जाती हैं। बच्चों के दांत निकलते समय सुहागा–शहद मिलाकर मसूढ़ों पर लगाने से दांत आसानी से निकलते हैं। यदि दांत में अचानक दर्द हो जाये तो जिस दांत में दर्द हो उस स्थान में रुई का फाहा शहद में भिगोकर रखने से दर्द दूर होता है। आंखों की ज्योति बढ़ाने, उसमें आए विकारों को दूर करने, पलकों की सूजन एवं अन्य आंखों की बीमारियों में शुद्ध शहद सुरमें की भांति प्रयोग करना चाहिए। रात को सोते समय एक गिलास दूध में एक चम्मच शहद घोलकर पीने से खांसी अथवा जुकाम जैसी बीमारियों से छुटकारा पाया जा सकता है। जुकाम और कफ के कारण यदि टांसिल बढ़ जाए तो शहद में जल मिलाकर कुल्ला करने से आराम मिलता है।

शहद पाचनकारी है। पाचन की कोई गड़बड़ हो, अजीर्ण हो जाए या पेट में गैस हो जाए तो शहद एक या दो चम्मच दिन में तीन-चार बार लेने से आराम मिलता है। शहद के सेवन से बच्चे का कब्ज भी दूर हो जाता है। इस प्रकार शहद में अनेकों छोटी-मोटी बीमारियों को दूर करने की अद्भुत क्षमता है। आधुनिक खोजों से यह भी पता चला है कि शहद में विटामिन 'ए' और 'बी' भी पाये जाते हैं तथा शहद में विभिन्न धातु भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहते हैं। कीटाणुओं को नष्ट करने की भी अद्भुत क्षमता भी शहद में है।

तृप्ति-बंक्स रोड
मण्डी मंडी (राज.)

डा. अम्बेडकर ने कहा था...

रमेश चन्द

डा. अम्बेडकर ने 18 दिसम्बर, 1955 को आगरा की एक सभा में भाषण देते हुए कहा था, "आधुनिक मशीनगत सभ्यता, खोजों तथा विचारों से भारत के उन उपेक्षित देहाती लोगों को लाभ पहुंचाना आवश्यक है जो सदैव परिश्रम करने के पश्चात भी पिछड़े तथा निर्धन रहते हैं।... यदि सच्ची एवं प्रगतिशील समाजवादी समाज की स्थापना करनी है तो देहाती क्षेत्रों में शिक्षा तथा आधुनिक सुविधाएं पहुंचानी चाहिए।"

"मुझे यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आज भी दलित वर्ग के लोग गांवों में सम्मानपूर्वक नहीं रह सकते। यदि हम गांवों में जाएं तो हमें मालूम होगा कि वहां के लोग यह नहीं जानते कि वोट क्या है? पार्टी क्या है? जमीन में हम बराबर का हिस्सा लेंगे। यह नहीं हो सकता कि हम गरीब भूमिहीन बने रहे और सामंत लोग बड़े-बड़े फार्मों के मालिक बन बैठें।"

उन्होंने संविधान सभा में बहस के समय खेतीहर मजदूरों के विषय में कहा था, "सभी मजदूरों के लिए काम की शर्तें भी वैसी ही हों जैसी भविष्य निधि, मालिक के दायित्व, मजदूरों को मुआवजा, स्वास्थ्य बीमा, अक्षमता पेंशन शामिल हों, फिर चाहें वे खेत मजदूर हों या कारखाना मजदूर, ये सुविधाएं सभी को मिलें।

डा. अम्बेडकर के अनुसार दलितों को खतरा ब्राह्मणों से नहीं बल्कि कृषि पर आधिपत्य जमाए हुई जातियों से है। उन्होंने लोकतान्त्रिक सामूहिक व्यवस्था का पक्ष लिया जिसका उद्देश्य आर्थिक शोषण और सामाजिक अन्याय को दूर करना बताया।

डा. अम्बेडकर ने गांवों की पंचायतों का विरोध किया। लेकिन बाद में संविधान में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के रूप में ग्राम पंचायतों के महत्व को माना। उन्होंने आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को राजनैतिक अधिकारों की तरह संविधान में मूल अधिकारों के अध्याय में रखने की बात कही। लेकिन उस समय की परिस्थितियां ऐसी थीं कि उनको वहां पर रखना असम्भव था। फिर भी वे राज्य के नीति निदेशक तत्वों के रूप में रखे गए, जो कि सरकार के लिए एक प्रकार के दिशा-निर्देश हैं। कोई भी सरकार इन नीति निदेशक तत्वों की अवहेलना नहीं कर सकती।

डा. अम्बेडकर भारत की अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का कारण भूमि प्रथा के परिवर्तन में धीमी गति का होना मानते थे जिनके समाधान के लिए वे सामूहिक व्यवस्था स्थापित करने की बात कहते थे। वे कृषि का राष्ट्रीयकरण करने के पक्षपाती थे। वे भूमि पर आय कर की तरह लगान होने चाहिए की बात करते थे।

डा. अम्बेडकर ने अनेक क्षेत्र में कार्य किया लेकिन वे सबसे अधिक जातिवाद उन्मूलन तथा छुआछात का अन्त करने को कहते थे क्योंकि इन सामाजिक बुराइयों के कारण आर्थिक सहयोग तथा सामाजिक संचार नहीं हो पाता। इनसे ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं कि गांव में लोग प्रगति के स्थान पर आपसी संघर्ष और रागद्वेष में फंसे रहते हैं।

डा. अम्बेडकर ने अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए महाड़ तालाब सत्याग्रह किया और कालाराम मंदिर (नासिक) में 5 वर्ष तक आन्दोलन चलाने के बाद प्रवेश किया। संविधान द्वारा अस्पृश्यता का अन्त किया। स्वतंत्र मजदूर यूनियनें बनाने की वकालत की। प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य घोषित कराई। हिन्दू कोड बिल पेश करके महिलाओं को समाज में उचित स्थान दिलाने की कोशिश की। पिछड़ेपन के लिए डा. अम्बेडकर दलितों को भी उत्तरदायी मानते थे और कहते थे कि विकास के लिए उनको ही प्रयत्न करने होंगे। दलित वर्ग भी कई जातियों/उपजातियों में बंटा हुआ है और इनमें भी छुआछात विद्यमान है। इनमें अनेक कुरीतियां/प्रथाएं हैं जो कि इनके विकास में बाधा डालती हैं। □

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली 110001 द्वारा प्रकाशित और